आनंद की खोज

प्रवचन-क्रम

1. शब्दों से मुक्त हो जाएं...2
2. जीवंत शांति शक्तिशाली है...18
3. विश्वास--सबसे बड़ा बंधन...35
4. आदर्शों को मत थोपें..47

आनंद की खोज
पहला प्रवचन

शब्दों से मुक्त हो जाएं

एक छोटी सी घटना से मैं आज की चर्चा शुरू करूंगा।
एक गांव में एक अपरिचित फकीर का आगमन हुआ था। उस गांव के लोगों ने शुक्रवार के दिन, जो उनके धर्म का दिन था, उस फकीर को मस्जिद में बोलने के लिए आमंत्रित किया। वह फकीर बड़ी खुशी से राजी हो गया। लेकिन मस्जिद में जाने के बाद, जहां कि गांव के बहुत से लोग इकट्ठा हुए थे, उस फकीर ने मंच पर बैठ कर कहाः मेरे मित्रो, मैं जो बोलने को हूं, जिस संबंध में मैं बोलने वाला हूं, क्या तुम्हें पता है वह क्या है? बहुत से लोगों ने एक साथ कहाः नहीं, हमें कुछ भी पता नहीं है। वह फकीर मंच से नीचे उतर आया और उसने कहाः ऐसे अज्ञानियों के बीच बोलना मैं पसंद न करूंगा, जो कुछ भी नहीं जानते। जो कुछ भी नहीं जानते हैं उस विषय के संबंध में जिस पर मुझे बोलना है, उनके साथ कहां से बात शुरू की जाए? इसलिए मैं बात शुरू ही नहीं करूंगा। वह उतरा और वापस चला गया।
वह सभा, वे लोग बड़े हैरान रह गए। ऐसा बोलने वाला उन्होंने कभी देखा न था। लेकिन फिर दूसरा शुक्रवार आया और उन्होंने जाकर उस फकीर से फिर से प्रार्थना की कि आप चलिए बोलने। वह फकीर फिर से राजी हो गया और मंच पर बैठ कर उसने फिर पूछा, मेरे मित्रो, मैं जिस संबंध में बोलने को हूं, क्या तुम्हें पता है वह क्या है? उन सारे लोगों ने कहाः हां, हमें पता है। क्योंकि नहीं कह कर वे पिछली दफा भूल कर चुके थे। उस फकीर ने कहाः तब फिर मैं नहीं बोलूंगा, क्योंकि जब तुम्हें पता है तो मेरे बोलने का कोई प्रयोजन नहीं। जब तुम्हें ज्ञात ही है तो ज्ञानियों के बीच बोलना फिजूल है। वह उतरा और वापस चला गया।
उन गांव के लोगों ने बहुत सोच-विचार कर यह तय किया था कि अब कि बार "नहीं" कोई भी नहीं कहेगा, लेकिन हां भी फिजूल चली गई।
तीसरा शुक्रवार आया। वे सारे लोग फिर उस फकीर के पास गए और उन्होंने कहा कि चलें और हमें उपदेश दें, वह फकीर फिर राजी हो गया। वह मंच पर आकर बैठा और उसने पूछाः मेरे मित्रो, क्या तुम्हें पता है मैं क्या बोलने वाला हूं? उन लोगों ने कहाः कुछ को पता है और कुछ को पता नहीं है। उस फकीर ने कहाः तब जिनको पता है वे उनको बता दें जिनको पता नहीं है। मेरा क्या काम है। वह उतरा और वापस चला गया।
चौथे शुक्रवार को उस गांव के लोगों नहीं की कि उस फकीर को फिर से आमंत्रण दें। क्योंकि उनके पास चौथा कोई उत्तर ही न था। तीन उत्तर थे और तीनों समाप्त हो गए थे और तीनों व्यर्थ हो गए थे।
अगर आज मैं भी आपसे यह कहूं, तो आपके पास चौथा उत्तर है? चौथा उत्तर क्या हो सकता है? और अगर चौथा उत्तर न हो, तो एक रास्ता तो यह है कि उस फकीर की भांति मैं भी उठूं और चला जाऊं और आपसे कहूं कि बोलने का कोई मतलब नहीं है और या फिर चौथा उत्तर मैं आपको बताऊं?
मैं उस फकीर जैसा कठोर नहीं हूं, इसलिए नहीं जाऊंगा। उस संबंध में निश्चिंत रहें। और चौथा उत्तर क्या हो सकता है, उस संबंध में आज आपसे मैं बात करूंगा। यह चौथा उत्तर न केवल जो मैं कहूंगा उसे समझने के लिए जरूरी है, बल्कि जीवन को, सत्य को जानने के लिए भी वही चौथा उत्तर जरूरी है। परमात्मा की खोज में भी वही चौथा उत्तर जरूरी है। आनंद की तलाश में भी वही चौथा उत्तर जरूरी है।
काश, उस मस्जिद के लोगों ने वह चौथा उत्तर दिया होता। लेकिन जमीन पर कोई ऐसी मस्जिद और मंदिर नहीं है जहां वह चौथा उत्तर मिल सके। इसलिए वहां भी नहीं मिला।
वह चौथा उत्तर क्या है? जो कि यदि दिया गया होता, तो वह फकीर उस दिन वहां बोलता और लोगों से अपने हृदय की बातें कहता। क्या ये तीन ही उत्तर हो सकते थे? क्या यह नहीं हो सकता था कि वे सारे लोग कोई भी उत्तर न देते और चुप रह जाते? वह चौथा उत्तर होता। वे कोई भी उत्तर न देते और चुप रह जाते।

वह चुप रह जाना चौथा उत्तर होता। और जो चुप रह जाने में समर्थ है, वह उस बात को भी समझ सकेगा, जो कही जा रही है। और उस जीवन को भी समझ सकेगा, जो हमारे चारों ओर मौजूद है। लेकिन हममें से चुप रहने में कोई भी समर्थ नहीं है। हम बोलने में समर्थ हैं लेकिन चुप रहने में समर्थ नहीं। हम शब्दों के साथ खेलने में समर्थ हैं लेकिन मौन रह जाने में नहीं। और इसीलिए शायद हम जीवन को गंवा देते हैं।
जो जीवन हमारे चारों तरफ मौजूद है, चाहे उसे कोई परमात्मा कहे और जो जीवन हमारे भीतर मौजूद है, चाहे कोई उसे आत्मा कहे। हम उस जीवन को जानने से वंचित रह जाते हैं क्योंकि हम चुप होने में समर्थ नहीं। जानने के लिए चाहिए साइलेंट माइंड, जानने के लिए चाहिए मौन, जानने के लिए चाहिए एक ऐसा मन जो बिल्कुल चुप हो सके। लेकिन हम बोलते हैं, बोलते हैं। जागते हैं तब भी और सोते हैं तब भी। किसी से बात करते हैं तब भी और नहीं बात करते हैं तब भी हमारे भीतर बोलना चल रहा है। यह जो चैटरिंग है, यह जो निरंतर बोलना है, ये जो निरंतर शब्द ही शब्द हैं, इन शब्दों और शब्दों में हमारा मन उस सामर्थ्य को खो देता है, उस शक्ति को खो देता है, उस शांति को खो देता है, उस दर्पण को खो देता है, जिसमें कि जीवन को जाना और जीया जा सकता है। लेकिन शायद हमें इसका कोई स्मरण भी नहीं है।
क्या कभी हमें यह खयाल आया कि जैसे समुद्र लहरों से भरा हो, तूफान में हो; झील लहरों से भरी हो, आंधी आ गई हो, तो उस झील में फिर चांद दिखाई पड़ना बंद हो जाता है। क्या हमारे मन भी निरंतर आंधियों से भरे हुए नहीं हैं? क्या निरंतर उनमें भी शब्दों की हवाएं और शब्दों के तूफान नहीं उठ आते? क्या कभी एक क्षण को भी वहां शांति होती है? सब मौन होता है? नहीं होता है। और इसके कारण कुछ, कुछ बात घटित हो जाती है, जो हमारे और जीवन के बीच एक दीवाल बन जाती है और हम जीवन को नहीं जान पाते। और फिर इसी मन को लेकर हम खोजने निकलते हैं। शास्त्रों में खोजते हैं। इसी मन को लेकर हम पहाड़ों पर जाते हैं। इसी मन को लेकर हम मंदिरों में जाते हैं। लेकिन मन हमारा यही है जो शब्दों से भरा हुआ है। और कभी हमें यह खयाल भी पैदा नहीं होता कि यह मन जो इतना ज्यादा भरा हुआ है, इतना ज्यादा व्यस्त, इतना आकुपाइड है, इतना- इतना शब्दों से दबा है, इतने शोरगुल से भरा है, यह क्या जानने में समर्थ हो सकता है? जानने के लिए इसके भीतर अवकाश कहां? स्पेस कहां? जगह कहां? स्थान कहां? जहां कोई नया सत्य प्रवेश कर सके, कोई नई बात सुनी जा सके, कोई नया तथ्य देखा जा सके। जगह कहां है? मन खाली कहां है? मन है भरा हुआ।
उस फकीर ने यही उन लोगों से पूछा था और उनमें से एक भी व्यक्ति इस बात
की गवाही न दे सका कि वह चुप होने में समर्थ है, मौन रह जाने में समर्थ है। और तब उस फकीर ने ठीक ही किया कि उनसे वह कुछ कहने को राजी न हुआ। उसका कहा हुआ व्यर्थ होता। वहां सुनने वाला कोई मौजूद ही नहीं था। आप यहां मौजूद हैं, लेकिन केवल वही सुन पाएगा, जो चुप होगा, मौन होगा। और जो अपने भीतर बोल रहा है, वह कैसे सुन सकेगा? और जो अपने भीतर बातें कर रहा है, उसके भीतर कोई दूसरे शब्द कैसे पहुंच पाएंगे?
साइलेंस, एक शांति, चौथा उत्तर है। वह कैसे हमारे भीतर पैदा हो सकता है, उसकी मैं आज आपसे बात करूंगा।
इसके पहले कि मैं इस संबंध में कुछ कहूं कि हमारे भीतर मौन कैसे पैदा
हो सकता है, जो कि सत्य को जानने का द्वार है और मार्ग है, यह जान लेना जरूरी होगा कि हमारे भीतर इतने शब्द कैसे इकट्ठे हो गए? शायद इस बात को जानने से ही, कितने शब्द हमारे भीतर कैसे इकट्ठे हो गए हों, हम उन्हें निकालने में भी समर्थ हो जाएं।
पहली बात, शब्द इकट्ठे हुए नहीं हैं, हमने उन्हें इकट्ठा किया है। क्योंकि अगर वे इकट्ठे हुए होते, तो हम उन्हें दूर भी नहीं कर सकते थे। हमने उन्हें इकट्ठा किया है। हम चौबीस घंटे उन्हें इकट्ठा कर रहे हैं। हम चौबीस घंटे सब तरफ से उनको ढूंढ कर ला रहे हैं। शायद हमें यह खयाल है कि जितने ज्यादा शब्द होंगे हमारे पास, उतना ही बड़ा हमारा ज्ञान हो जाएगा। शायद हमें खयाल है कि बहुत शब्दों का जो मालिक है, वह ज्ञान का भी मालिक हो जाता है। शायद हमें खयाल है कि शब्द जिसके पास हैं, उसके पास कोई आंतरिक

संपदा हो गई है। इन्हीं शब्दों, इन्हीं शब्दों के संग्रह को हमें बताया गया है कि ज्ञान है और हमने इन्हीं शब्दों को इकट्ठा करके अपने को भी विश्वास दिला लिया है कि हम कुछ जानते हैं।
लेकिन अगर हम कुछ भी शब्दों को उठा कर देखें और खोज करें, तो हमें भ्रम दिखाई पड़ जाएगा। ईश्वर, आत्मा, मोक्ष, प्रेम, सत्य, अहिंसा, इन शब्दों में हम सभी शब्दों से परिचित हैं। लेकिन इनमें से एक भी शब्द को उठा कर उसे थोड़ा खोजें, तो हमें पता चलेगा कि उस शब्द के भीतर हमारे पास कोई अनुभव नहीं है।
ईश्वर, इस शब्द को थोड़ा सोचें। इस शब्द के साथ आपकी कौनसी अनुभूति जुड़ी है? यह कोरा शब्द है या कोई अनुभव भी पीछे है? आत्मा, इसके साथ कौन सा अनुभव है हमारा? कौन सी हमारी अपनी प्रतीति है? कौन सा एक्सपीरिएंस है? या कि एक कोरा शब्द है? जब मैं कहता हूं, मकान; जब मैं कहता हूं, वृक्ष, तब शब्द नहीं होता हमारे पास, पीछे एक अनुभूति भी होती है। जब मैं कहता हूं, घोड़ा, तो शब्द ही नहीं होता, घोड़े का एक अनुभव भी होता है। लेकिन जब मैं कहता हूं, आत्मा; जब मैं कहता हूं, ईश्वर, तब हमारे पास क्या है? हमारे पास केवल एक शब्द है थोथा और खाली, जिसमें कोई हमारा अनुभव नहीं है, जिसमें हमारा कोई जानना नहीं है।
मनुष्य के पास दो तरह के शब्द हैं। एक तो वे शब्द हैं, जो उसके अनुभव
से निर्मित हुए हैं और एक वे शब्द हैं, जिनके साथ उसका कोई अनुभव नहीं है। धर्म और दर्शन और फिलासफी के संबंध में हम जो कुछ जानते हैं, वे दूसरे तरह के शब्द हैं, जिनके साथ हमारा कोई अनुभव नहीं है। और उन शब्दों के आधार पर, जो बिल्कुल निष्प्राण, जो बिल्कुल डेड और मुर्दा हैं--जो वैसे ही हैं, जैसे एक कवि एक समुद्र के किनारे था। वहां बड़ी सुखद हवाएं थीं, बड़ी शीतल हवाएं थीं, और वहां उसने सोचा कि उन हवाओं को वह अपनी प्रेयसी के पास भी पहुंचा दे। लेकिन उसकी प्रेयसी तो हजारों मील दूर एक अस्पताल में बीमार थी। तो उसने एक बहुत सुंदर संदूक में उस समुद्र की हवाओं को बंद किया और उस संदूक को अपनी प्रेयसी के पास पहुंचा दिया। और एक पत्र लिखा कि समुद्र के किनारे इतनी सुंदर हवाएं हैं, इतनी शीतल, इतनी आनंददायी कि मेरा मन होता है कि उन्हें तुम्हें मैं भेंट भेजूं। तो इस छोटी सी पेटी में थोड़ी सी हवाएं बंद करके भेज रहा हूं। तुम उन हवाओं को पाकर प्रसन्न हो जाओगी। लिखना मुझे, हवाएं तुम्हें कैसी लगीं? वह पेटी पहुंची। उसकी प्रेयसी ने वह पत्र पढ़ा और उस पेटी को खोला, लेकिन उसके भीतर तो कुछ भी नहीं था।
समुद्र की हवाओं को पेटियों में नहीं भरा जा सकता है। समुद्र की हवाओं को जानना हो, तो उन्हें अपने घर तक लाने का कोई उपाय नहीं है। खुद हमें ही समुद्र के किनारे जाना पड़ेगा। यह नहीं हो सकता है कि मेरा कोई मित्र पेटियों में भर कर उन्हें मेरे पास भेज दे। हां, यह हो सकता है कि मैं खुद समुद्र के किनारे जाऊं और जानूं। ताजी हवाओं को पेटियों में भरते से ही वे मुर्दा हो जाएंगी। उनकी सारी ताजगी चली जाएगी। उसके पास पेटी तो पहुंची लेकिन हवाएं नहीं पहुंचीं। उसने बहुत खोजा उस पेटी में, लेकिन वहां कोई हवाएं नहीं थीं।
हमारे पास भी शब्द पहुंच जाते हैं, अनुभूतियां नहीं पहुंचतीं। सत्य
के किनारे पर जो अनुभव किया जाता है, उसे सत्य के किनारे पर ही जाकर अनुभव किया जा सकता है। कोई अनुभव करे और शब्द हमारे पास पहुंचा दे, वे शब्द हमारे पास खाली पेटियों की भांति पहुंचते हैं, उनमें कोई हवाएं नहीं होतीं। और उन्हीं शब्दों को हम इकट्ठा कर लेते हैं; और उन्हीं शब्दों के हम मालिक बन जाते हैं; और उन्हीं शब्दों के आधार पर हम जीना शुरू कर देते हैं। वे शब्द ही झूठे हो चुके हैं। हमारा जीवन भी उनके साथ झूठा हो जाता है। और उन्हीं शब्दों के आधार पर हम जीवन के प्रश्नों के उत्तर देने लगते हैं।
अगर कोई पूछे, ईश्वर है? तो हम कोई उत्तर जरूर देंगे। जैसा उस मस्जिद
के लोगों ने उत्तर दिया। अगर कोई पूछे, आत्मा है? तो हम उत्तर जरूर देंगे। अगर कोई पूछे, सत्य क्या है? तो हम उत्तर जरूर देंगे। और हममें से इतना समर्थ कोई भी नहीं होगा, जो चुप रह जाए और इस बात को अनुभव करे कि मेरे पास

थोथे शब्दों के सिवाय और क्या है? तो मैं कैसे उत्तर दूं? लेकिन जो आदमी चुप रह जाएगा, उसने सत्य की तरफ, जानने की तरफ, पहला कदम उठा लिया। उसने सत्य की तरफ यात्रा का पहला कदम उठा लिया, क्योंकि वह शब्दों की व्यर्थता को जान गया है। और जो शब्दों की व्यर्थता को जान जाता है, वही सत्य तक जाने की खोज कर सकता है। लेकिन जो शब्दों से तृप्त हो जाता है, उसकी तो खोज बंद हो जाती है। और हम सारे लोगों की खोज बंद है।
कोई एक तरह के शब्दों से तृप्त हो गया है; कोई दूसरे तरह के शब्दों से तृप्त हो गया है। कोई हिंदू होने से; कोई मुसलमान होने से; कोई जैन होने से। यह सब होना क्या है? यह शब्दों से तृप्त हो जाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। हमने कुछ उत्तर स्वीकार कर लिए हैं। और जो आदमी कुछ उत्तर स्वीकार कर लेता है, उसका मन मुर्दा हो जाता है, उसकी खोज बंद हो जाती है। मुर्दा मन शब्दों से भरा हुआ होता है। ताजा मन शब्दों से नहीं; जिज्ञासा से, इंक्वायरी से। मुर्दा मन का लक्षण हैः उसके पास सब उत्तर बंधे हुए तैयार होते हैं। जीवित मन का लक्षण हैः उसके पास प्रश्न तो होते हैं लेकिन उत्तर नहीं होते। उसके पास जिज्ञासा तो होती है, खोज की आकांक्षा और प्यास तो होती है लेकिन उत्तर नहीं होते। और जिसके पास उत्तर नहीं हैं और प्रश्न हैं, उसका मन अचानक चुप हो जाता है, मौन हो जाता है।
मौन हो जाने का पहला सूत्र हैः उत्तरों से मुक्त हो जाइए। लेकिन हमारी हालत बिल्कुल उलटी है। हमारे पास प्रश्न कम हैं, उत्तर ज्यादा हैं। जिसके पास प्रश्न नहीं हैं और उत्तर हैं, उस आदमी ने खोज बंद कर दी। वह तृप्त हो गया, वह रुक गया। और जीवन सतत मांग करता है आगे बढ़ो; और जीवन पुकारता है आगे आओ; और जीवन कहता है कहीं रुक मत जाना क्योंकि रुकने के सिवाय मृत्यु और कुछ भी नहीं। लेकिन जो सतत बढ़ता है और कहीं रुकता नहीं--उस सातत्य में, उस निरंतर बढ़ते जाने में ही, जीवन और उसके कदम एक साथ बढ़ने लगते हैं। और एक दिन आता है कि जीवन की जो सतत प्रवाहमान धारा है, वह जो जीवन की गंगा है, वह उसके साथ एक हो जाता है। जीवन ठहरा हुआ नहीं है, लेकिन हमारे मन ठहरे हुए हैं। जीवन तो निरंतर, सतत आगे जा रहा है, प्रतिक्षण बहा जा रहा है
हेराक्लतु ने कोई दो हजार वर्ष पहले यूनान में कहा थाः नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। उसने जीवन की नदी के बाबत कहा था। नदी तो बही जाती है। आज उतरे हैं उसमें, कल उसी नदी में नहीं उतर सकेंगे। वह नदी आगे चली गई, दूसरे पानी ने जगह ले ली होगी। मैं तो कहता हूं, एक ही नदी में एक बार भी उतरना बहुत कठिन है। क्योंकि जब तक पैर नदी के पानी को छुएगा, नीचे का पानी बह गया। जब पानी में पैर नीचे जाएगा, तब तक ऊपर का पानी बह गया। जीवन तो बहाव है, लेकिन मनुष्य का मन ठहराव बन जाता है। और जो मन ठहर जाता है, वह जीवन से उसका संपर्क टूट जाता है, संबंध टूट जाता है। फिर वह कितना ही राम-नाम जपे और शास्त्र पढ़े, उसे कहीं परमात्मा की कोई झलक उपलब्ध न हो सकेगी, क्योंकि परमात्मा तो जीवन में व्याप्त है, जीवन का ही दूसरा नाम परमात्मा है।
जीवन से संबंध जोड़ना है, तो मुर्दा मन से संबंध तोड़ना पड़ेगा। और शब्दों से भरा हुआ मन डेड हो जाता है, मुर्दा हो जाता है। हम सबके मन मरे हुए मन हैं, जीवित मन नहीं हैं। जीवित मन के लिए चाहिए, जहां-जहां मन ठहर गया हो, वहां-वहां से हम मन को मुक्त कर लें। जहां-जहां मन रुक गया हो, वहां-वहां से हम उसे छोड़ दें। जिन-जिन किनारों को उसने जोर से पकड़ लिया हो, उन-उन किनारों को हम छोड़ दें, ताकि बहाव पैदा हो सके, ताकि मन भी एक गति पा सके, डाइनैमिक हो सके, डेड न रह जाए, परिवर्तन पा सके, प्रवाह पा सके। जितना प्रवाह मन में आएगा, उतना ही मन शांत होता जाएगा। मन की यह जो अशांति है, यह इसीलिए है कि मन को हम रोक कर बंद किए हुए हैं और सारा जीवन बहा जा रहा है। मन तड़प रहा है मुक्त होने को, लेकिन हम उसे बांधे हुए हैं। मन स्वतंत्र होने को पीड़ित है और हम उसे बांधे हुए हैं। और बांधे हुए हम किस चीज से? कोई लोहे की जंजीरें नहीं हैं, शब्दों की जंजीरें हैं। और शब्द इतनी अदभुत जंजीर बन जाते हैं कि आंखें बंद हो जाती हैं, कान बंद हो जाते हैं, हृदय बंद हो जाता है। एक शब्द सब कुछ बंद कर सकता है।

हिंदुस्तान में चार हजार, पांच हजार वर्षों से हम करोड़ों शूद्रों को सता रहे हैं, परेशान कर रहे हैं। क्यों? एक शब्द हमने ईजाद कर लिया, शूद्र। बस एक शब्द ईजाद कर लिया "शूद्र" और कुछ लोगों पर हमने चिपका दिया कि ये शूद्र हैं। फिर हमारी आंखें बंद हो गईं; फिर हम उनके कष्ट नहीं देख सके। क्योंकि शूद्र, दरवाजा बंद हो गया। फिर हम उनकी पीड़ाएं अनुभव नहीं कर सके, फिर हमारा हृदय उनके प्रति प्रेम से प्रवाहित नहीं हो सका। एक शब्द हमने चिपका दिया, शूद्र। एक ईजाद कर लिया शब्द। और उस शब्द के आधार पर हम पांच हजार साल से करोड़-करोड़ लोगों को परेशान कर रहे हैं। और हमें यह खयाल भी पैदा नहीं हुआ कि हम यह क्या कर रहे हैं? इसलिए खयाल पैदा नहीं हुआ क्योंकि जिसे हमने शूद्र कह दिया, वह हमारे लिए मनुष्य ही नहीं रह गया। उसका मनुष्यों से कोई संबंध नहीं रह गया। एक शब्द खड़ा हो गया शूद्र और मनुष्य और मनुष्य अलग हो गए। वह ठीक हमारे जैसा व्यक्ति दूसरी तरफ मनुष्यों के बाहर हो गया।
अगर उसने वेद की ऋचाएं सुन लीं, तो हमने उसके कान में शीशा पिघलवा कर भरवा दिया; क्योंकि वह सुनने का हकदार न था, वह शूद्र था। हमें यह खयाल भी न आया, उसके भीतर भी हमारे जैसी एक आत्मा है, जो सत्य की खोज करना चाहती है। और अगर उसने वेद को सुनने की हिम्मत की है, आकांक्षा की है, तो यह स्वागत के योग्य बात है। नहीं, यह हमें खयाल नहीं आया। एक शब्द काफी था कि वह शूद्र है और बात खत्म हो गई। हमारे कान बंद हो गए, हमारे प्राण बंद हो गए, हमारे हृदय बंद हो गए। हमने हजारों शब्द ईजाद कर लिए हैं और वे दीवाल की तरह खड़े हुए हैं।
मैं एक घर में मेहमान था। उस घर के लोगों ने मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। वे मुझे बड़े प्रेम से दो दिन अपने घर में रखे। चलने के कोई दो घंटे पहले उस घर के मालिक ने मुझसे पूछा, आपकी जाति क्या है? उन्हें मेरी जाति का कोई पता नहीं था। और मेरी कोई जाति है भी नहीं, पता हो तो कैसे हो? तो मैंने उनसे मजाक में ही कहा कि आप खुद ही सोचें कि मेरी जाति क्या हो सकती है? उनके घर में एक छोटा सा बच्चा था, उसने मेरी दाढ़ी वगैरह देख कर कहा कि कहीं आप मुसलमान तो नहीं? मैंने कहा कि अगर तुम कहते हो तो यही सही, मुसलमान ही सही। उस घर में बड़ी चिंता फैल गई। उन सबका मेरे प्रति रुख बदल गया। वह दो घंटे मैं दूसरा आदमी हो गया। उसके पहले मैं दूसरा आदमी था। एक शब्द बीच में आ गया "मुसलमान" और मैं दूसरा आदमी हो गया। मैं वही था, जो दो दिन से था, लेकिन वे बीते दो घंटे भिन्न हो गए। आते वक्त उन्होंने मेरे पैर पड़े थे, जाते वक्त उस घर में किसी ने मेरे पैर नहीं पड़े। एक शब्द बीच में आ गया। आते वक्त वे खुशी से भरे थे, जाने के बाद शायद उन्होंने अपना घर साफ किया हो। किया जरूर होगा, सफाई की होगी--एक मुसलमान घर में आ गया। मैं वही था, लेकिन एक शब्द बीच में आ गया और सारी बात बदल गई।
हमने न मालूम कितने शब्द खड़े किए हुए हैं जो दीवाल की तरह एक-दूसरे मनुष्य को अलग कर रहे हैं। और मनुष्य को ही अलग नहीं कर रहे हैं, हमारी आंखों को भी अंधा कर रहे हैं, हमारे प्राणों को भी बहरा कर रहे हैं, हमारी संवेदनशीलता को तोड़ रहे हैं।
जर्मनी में हिटलर ने कोई बीस लाख यहूदियों की हत्या करवाई। कौन लोगों
ने हत्या की? वे लोग कोई बहुत बुरे लोग हैं? वे हम जैसे ही लोग हैं। पांच सौ यहूदी रोज नियमित हत्या किए जाते रहे। कौन लोग हत्या कर रहे थे उनकी? वे कोई पागल हैं? उनके दिमाग खराब हैं? या कि वे कोई दैत्य हैं, राक्षस हैं? नहीं, हमारे जैसे लोग हैं। सब बातें हमारे जैसी हैं। लेकिन एक शब्द यहूदी, और उस शब्द के साथ उनके प्राण पागल हो गए और उन्होंने वह किया जो आदमी को करने में जरा भी शोभा नहीं देता।
हमने अपने मुल्क में क्या किया? हिंदुओं ने मुसलमानों के साथ क्या किया? मुसलमानों ने हिंदुओं के साथ क्या किया? छोड़ दें हिंदू-मुसलमान की बात, महाराष्ट्रियन गुजराती के साथ क्या कर सकता है? गुजराती महाराष्टियन के साथ क्या कर सकता है? हिंदी बोलने वाला गैर-हिंदी बोलने वाले के साथ क्या कर सकता है? गैर-हिंदी बोलने वाला हिंदी बोलने वाले के साथ क्या कर सकता है? कुछ शब्द और उन शब्दों में जहर भरा जा सकता है और हमारे प्राण

बिल्कुल ही पागल हो सकते हैं। ऐसे बहुत से शब्दों की दीवाल हमने खड़ी कर ली है। इन शब्दों की दीवालों में जो घिरा है, वह आदमी कभी भी धार्मिक नहीं हो सकता।
शब्दों से मुक्त होना चाहिए। तो एक तो शब्द हैं, दीवाल की तरह मनुष्य-मनुष्य को तोड़ रहे हैं और साथ ही ये शब्द जीवन के प्रति भी हमारी आंखों को नहीं खुलने देते, वहां भी आंखों को बंद रखते हैं। हम शायद सब तरफ शब्दों को खड़ा कर लेते हैं। अपने चारों तरफ एक किला बना लेते हैं शब्दों का और उसके भीतर छिप जाते हैं। और जब भी जीवन में कोई अनहोनी और नई घटना घटती है, तो हम पुराने शब्दों से उसकी व्याख्या कर लेते हैं, और उसका नयापन समाप्त हो जाता है और खत्म हो जाता है।
यह जो हमारी स्थिति है यह हमें चुप नहीं होने देती, मौन नहीं होने देती, ताजा नहीं होने देती। वह जो मस्तिष्क है, उसको फ्रेश और नया नहीं होने देती। और नया मस्तिष्क न हो, तो कैसे जीवन से हम जुड़ सकें? कैसे जीवन को जान सकें? और शांत मन न हो, तो कैसे हम सत्य को जान सकें? और दीवालें न टूटें, तो हम कैसे मनुष्य से जुड़ सकें? दूर हैं पशु और पक्षी तो, दूर हैं पौधे, दूर है आकाश, दूर हैं आकाश के तारे, आदमी से ही हम नहीं जुड़ पा रहे हैं, तो हम परमात्मा से जुड़ने की बात कैसे करें?
यहां इतने लोग बैठे हैं। हम सबके बीच में दीवालें खड़ी होंगी, न मालूम किस-किस किस्म की। और उन सब दीवालों की ईंटें शब्दों से बनी हुई हैं, कोई लोहे से नहीं बनी हुईं। उन्हें तोड़ देने में जरा भी कठिनाई नहीं है। एक हाथ का धक्का, एक हवा का झोंका काफी होगा और वे गिर जाएंगी और आप एक नये मनुष्य होकर खड़े हो जाएंगे। अपने चारों तरफ से शब्दों की दीवाल हटा देनी जरूरी है। तो शायद हमारे भीतर जानने की क्षमता पैदा हो सके, सुनने की क्षमता पैदा हो सके, और शायद हमारे द्वार खुल सकें, और हमारे जो भीतर चारों तरफ जीवन है, वह प्रवेश कर सके। अभी तो वह कहीं से भी प्रवेश नहीं कर पाता है।
ऐसे ही शब्द--सत्य और आत्मा और ईश्वर और मोक्ष हमने सीख रखे हैं और उन्हें हम तोतों की भांति रटते रहते हैं और सोचते हैं कि शायद उन्हीं के द्वारा हमारे जीवन में आनंद आ जाएगा, शायद मुक्ति आ जाएगी, शायद अमृत की उपलब्धि हो जाएगी। नहीं होगी। रटते रहें तोतों की भांति हम जीवन भर। जीवन रटने से उपलब्ध नहीं होता। बल्कि रटने वाला, रिपीट करने वाला जो मन है, वह धीरे-धीरे जड़ हो जाता है, धीरे-धीरे और ज्यादा डलनेस पैदा हो जाती है, और ज्यादा मुर्दा हो जाता है और मर जाता है।
क्या करें? कैसे यह दीवाल टूट जाए? पहली बात, इस बात का हमें स्पष्ट बोध हो जाना चाहिए कि ये शब्द दीवाल बना रहे हैं। क्योंकि अगर कोई आदमी कारागृह में बंद हो, जेल में बंद हो और उसे यह भी पता न हो कि वह जेल में बंद है, तो वह छूटने का उपाय ही नहीं करेगा। अगर उसे यह भी पता न हो कि मैं जेल के भीतर बंद हूं, तो छूटने का सवाल ही नहीं है, मुक्ति के प्रयास का प्रयत्न भी नहीं होगा, प्रश्न भी नहीं होगा। कारागृह से छूटने के लिए पहली बात तो जरूरी है कि वह जान ले कि मैं कारागृह में बंद हूं। अगर यह अनुभव में आ जाए कि मैं कारागृह में बंद हूं, तो जिन दीवालों को उसने कल तक सजाया था और चित्र लगाए थे और फूल लगाए थे, वे दीवालें उसे शत्रु की भांति मालूम होने लगेंगी। वह उनकी सजावट बंद कर देगा और उनको तोड़ने का उपाय करेगा।
हम शब्दों की दीवालों को कारागृह अगर न मानते हों, तो हम शब्दों की दीवालों को और सजावट करते हैं और उस पर फूल लगाते हैं, इत्र छिड़कते हैं। उन शब्दों की हम पूजा करते हैं और उन शब्दों का हम और स्वागत करते हैं, तो दीवाल और बड़ी होती चली जाती है। हम सब अपने-अपने कारागृह को सजाने में लगे हुए हैं, तो उससे मुक्त होने का तो सवाल ही नहीं। हिंदू या मुसलमान शब्द कारागृह हैं। लेकिन हम तो हिंदू, जैन, मुसलमान, इन शब्दों को ऊंचा उठाने में लगे हैं। हम तो इस बात में लगे हुए हैं कि दुनिया में हिंदू धर्म का झंडा गड़ जाए, या ईसाई धर्म का झंडा गड़ जाए, या जैन धर्म का झंडा गड़ जाए। और हम तो जयजयकार करने की कोशिश में लगे हैं कि हिंदू धर्म की जय हो, मुसलमान धर्म की जय हो। हमारा झंडा गड़ जाए। और हम तो इसकी घोषणा करने में लगे हैं

कि हिंदू धर्म महान धर्म है और बाकी सब छोटे धर्म हैं। और इस्लाम ही असली धर्म है, बाकी सब झूठे हैं। और क्राइस्ट के सिवाय और कोई मुक्तिदाता नहीं है। इस तरह की बातें जो लोग कह रहे हैं, इस तरह की घोषणाएं जो लोग कर रहे हैं, वे तो अपने कारागृह को सजा रहे हैं, वे उसे तोड़ेंगे कैसे?
हम तो सारे लोग अपने-अपने शब्दों की पूजा करने में लगे हैं और हमने तो शब्दों के लिए मंदिर बना रखे हैं और हम लोगों को इकट्ठा कर रहे हैं उन शब्दों की रक्षा के लिए, संगठन बना रहे हैं। उन शब्दों की रक्षा के लिए हत्या करने के लिए हम तैयार हैं, उन शब्दों की रक्षा के लिए चाहे आदमी को मारना पड़े, हम मारने को राजी हैं। हमारी किताबें यह कर रही हैं। हमारे ग्रंथ यह कर रहे हैं। हमारा प्रचार यह कर रहा है। सारी दुनिया में धर्म के नाम पर शब्दों के झंडे गड़ाने की कोशिश की जा रही है, चाहे उनके आस-पास कितने ही आदमियों की हत्या हो जाए। और आज तक हत्या होती रही है, और आज भी हत्या हो रही है, और कल के लिए भी कुछ नहीं कहा जा सकता। अगर आदमी ऐसा ही रहा, तो कुछ भी हो सकता है।
पुराने शब्द फीके पड़ जाते हैं तो हम नये शब्द पकड़ लेते हैं। महावीर पर
आज लड़ाई होनी बंद हो गई, शायद मोहम्मद पर भी लड़ाई होनी करीब-करीब बंद हो गई, तो नये नाम आ गए हैं। मार्क्स नया नाम है। इस पर लड़ाई शुरू हो गई। कम्युनिज्म नया शब्द है, इस्लाम-हिंदू पुराने पड़ गए, अब इस पर लड़ाई शुरू हो गई। अब सारी दुनिया में कम्युनिज्म एक शब्द है, जिस पर लड़ाई खड़ी हुई है। नई आइडियालॉजी खड़ी हो गईं, जिन पर हम लड़ेंगे और हत्या करेंगे। अमरीका नये शब्दों को पकड़े हुए बैठा है, रूस नये शब्दों को पकड़े हुए बैठा है। नये शब्दों पर लड़ाई हो रही है। और लड़ाई यहां तक पहुंच सकती है कि शायद सारी मनुष्य-जाति को समाप्त हो जाना पड़े। किस बात पर? इस बात पर कि कुछ शब्द हमको प्रिय थे, और कुछ शब्द आपको प्रिय थे और हम अपने शब्दों को छोड़ने को राजी नहीं थे और आप अपने शब्दों को छोड़ने को राजी नहीं थे।
क्या आदमी अपने इस बचकानेपन से मुक्त नहीं होगा? क्या ये बच्चों जैसी बातें और शब्दों की लड़ाइयां बंद नहीं होंगी? ये तब तक बंद नहीं होंगी, जब तक हम शब्दों को आदर और पूजा देते रहेंगे। क्योंकि जिसको हम पूजा देते हैं, उससे हम छुटकारा कैसे पा सकते हैं? छुटकारा पाने के लिए पहली बात जरूरी है, शब्द कारागृह हैं और उनका ज्ञान हमें मुक्त नहीं करता बल्कि बांधता है, यह जान लेना जरूरी है। इसको जानते ही आपके भीतर से दीवाल गिरनी शुरू हो जाएगी। वह जो शब्दों का भवन है, वह खिसकना शुरू हो जाएगा। उसकी आधारशिला खींच ली गई। वह आधारशिला हमने अपने प्रेम से रखी है, पूजा से रखी है। अगर हम अपने पूजा और प्रेम को अलग कर लेते हैं, वह गिर जाएगी।
एक ऐसी दुनिया चाहिए जिसमें आदमी तो हों लेकिन हिंदू और मुसलमान न हों। ये बहुत कलंक के दाग हैं। एक ऐसी दुनिया तो चाहिए, जिसमें सोच-विचारशील लोग हों लेकिन शब्दों को पकड़ने वाले पागल नहीं। एक ऐसी दुनिया चाहिए, जहां आदमी-आदमी के बीच शब्दों की कोई दीवाल न रह जाए, तो शायद धर्म का राज्य शुरू हो सकता है। तो शायद व्यक्ति के जीवन में और समूह के जीवन में भी धर्म का अवतरण हो सकता है। उसके पहले नहीं हो सकता। उसके पहले कोई रास्ता नहीं है। इधर पांच हजार वर्षों में हमने शब्दों के जाल खड़े किए हैं और खुद उसमें फंस गए हैं। अब कौन इसको तोड़े? कुछ लोग अगर हिम्मत नहीं करेंगे, तो शायद यह शब्दों का जाल हमारी फांसी बन जाएगा और हमारा बचना मुश्किल हो जाएगा।
और कितने आश्चर्य की बात है कि पांच हजार साल का इतिहास देखने के बाद
भी हम शब्दों के प्रति जागरूक नहीं हो रहे हैं कि हमने क्या किया? हमें खयाल में भी नहीं आ रहा है कि इन शब्दों ने हमारे साथ क्या किया? और हमें किस स्थिति में पहुंचा दिया? एक-एक व्यक्ति के भीतर भी यह जाल है और सबके बाहर भी यह जाल है। हरेक को अपने भीतर इस जाल को तोड़ने में लगना होगा। तो ही उसके भीतर वह साइलेंस पैदा हो सकती है, जिसकी मैं आपसे बात कर रहा हूं। क्या करें? कैसे तोड़ें? लोग मुझसे निरंतर पूछते हैं, कैसे तोड़ें?
मैं उनसे कहता हूं, पहली बात, शब्दों के प्रति सारा आदर, सारी पूजा, शब्दों के प्रति सारा भक्ति-भाव छोड़ दें। शब्दों में कुछ भी नहीं है।

शब्दों में कोई सत्य नहीं है। सत्य तो वहीं अनुभव होता है, जहां सारे शब्द छूट जाते हैं। इसलिए शब्दों के प्रति सारी भक्ति, सारी पूजा जानी चाहिए। यह सारा शब्दों के प्रति जितना आदर है, सम्मान है, यह जाना चाहिए। सम्मान पैदा होना चाहिए सत्य के प्रति, शब्द के प्रति नहीं। और जिसको सत्य के प्रति सम्मान पैदा होगा, वह न तो हिंदू रह जाएगा, न मुसलमान, न जैन, न बौद्ध, न ईसाई, न पारसी। और जिसे सत्य के प्रति सम्मान पैदा होगा, वह न तो भारतीय रह जाएगा, न पाकिस्तानी, न चीनी। जिसे सत्य के प्रति सम्मान पैदा होगा, उसके जीवन से सारी सीमाएं गिर जाएंगी। क्योंकि सब सीमाएं शब्दों ने पैदा की हैं। सत्य की कोई सीमा नहीं है। सत्य असीम है। सत्य की कोई सीमा नहीं है। सत्य का कोई देश, कोई जाति, कोई धर्म नहीं। सत्य का कोई मंदिर, कोई मस्जिद नहीं। सत्य तो है पूरा जीवन, विराट जीवन। सभी कुछ जो चारों तरफ मौजूद है, वह सभी सत्य है। उस विराट और असीम से मिलने के लिए भीतर भी असीम मन चाहिए। सीमित और क्षुद्र मन, यह जो नैरो-माइंड है, यह जो छोटा सा मन है, यह काम नहीं कर सकेगा। विराट को पाने के लिए इसे भी विराट होना पड़ेगा। लेकिन हम ईश्वर को खोजने निकल पड़ते हैं। इसकी बिल्कुल भी खोज नहीं करते कि हमारा यह मन कितना क्षुद्र है।
एक फकीर के पास एक युवक गया और उस युवक ने कहाः मैं ईश्वर को, मैं सत्य
को खोजने आया हूं, क्या आप मुझे कोई मार्ग बता सकेंगे? वह फकीर बोला, इसके पहले कि मैं तुम्हें कुछ कहूं, मेरे साथ कुएं पर आओ--वह कुएं पर पानी भरने जा रहा था। उसने हाथ में एक बाल्टी ली और एक बड़ा ढोल लिया और वह कुएं पर गया। उसने बाल्टी कुएं में डाली, खींची। और वह युवक खड़ा हुआ देखता रहा। बाल्टी खींच कर उसने उस बड़े डम में जिसे वह अपने साथ लाया था, उसमें पानी डाला। लेकिन डम के नीचे कोई बाट्म नहीं था, उसके नीचे कोई पेंदी नहीं थी। पानी जमीन पर बह गया। उसने दूसरी बाल्टी खींची, वह भी डाली। वह लड़के का संयम टूट गया। उसने एक, दो, तीन बाल्टियां बहते देखीं, चौथी बाल्टी पर उसने कहाः महानुभाव! आप भी आश्चर्यजनक मालूम पड़ते हैं। जिस ढोल में आप पानी भर रहे हैं, उसमें नीचे कोई पेंदी नहीं है, और पानी बहा जा रहा है। जिंदगी भर भी पानी भरते रहिए, तो भी पानी भरेगा नहीं।
उस फकीर ने कहाः मेरे मित्र! मुझे ढोल की पेंदी से क्या मतलब? मुझे पानी भरना है, तो मैं ढोल के गले पर आंखें गड़ाए हुए हूं। जब गले तक पानी आ जाएगा, तो मैं समझ लूंगा, पानी भर गया। पेंदी से मुझे क्या लेना-देना? युवक बहुत हैरान हुआ इस उत्तर से। उस दिन चला गया। लेकिन रात उसने सोचा कि जो बात मुझे दिखाई पड़ रही थी, सीधी और साफ बात थी। अंधे आदमी को भी पता चल जाती कि उस ढोल में पेंदी नहीं थी। वह उस फकीर को नहीं दिखाई पड़ी, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इसमें जरूर कुछ न कुछ रहस्य होना चाहिए। जो मुझे दिखाई पड़ रहा था, उसे क्यों दिखाई नहीं पड़ेगा?
वह वापस गया दूसरे दिन और उसने कहा कि मुझे माफ करें, मैंने अशिष्टता
की कि मैंने आपसे कहा कि जिस ढोल में पेंदी नहीं है उसमें पानी मत भरिए। लेकिन रात मैंने सोचा तो मुझे दिखाई पड़ा कि जो बात मुझे दिखाई पड़ रही थी, मैं जो कि बिल्कुल अज्ञानी हूं, तो क्या आपको दिखाई नहीं पड़ रही होगी? आपको भी दिखाई पड़ रही होगी। तब जरूर बात कुछ और है। तो मुझे कृपा करके समझाएं कि उस पेंदी से रहित ढोल में पानी भरने का क्या आशय था?
उस फकीर ने कहाः ठीक हुआ कि तुम लौट आए, क्योंकि अक्सर जो लोग सत्य खोजने आते हैं, उनके साथ पहला काम मैं यही करता हूं, पेंदी रहित ढोल में पानी भरता हूं। वे मुझे पागल समझ कर वापस लौट जाते हैं और फिर कभी नहीं आते। लेकिन तुम लौट आए। तुम पहले आदमी हो लौटने वाले। तुमसे मैं कुछ कहूंगा।
तुम्हें यह तो दिखाई पड़ गया कि जिस ढोल में पेंदी नहीं है, उसमें पानी नहीं भरा जा सकता। लेकिन तुम्हें यह दिखाई क्यों नहीं पड़ता कि तुम्हारा मन, जो इतना क्षुद्र है, उसमें आकाश जैसे विराट सत्य को नहीं भरा जा सकता? तुम्हें यह तो दिखाई पड़ गया कि जो बर्तन पानी भरने में समर्थ नहीं है, उसमें पानी नहीं भरा जा सकता? लेकिन तुम्हें यह दिखाई क्यों नहीं पड़ता कि जो मन अभी सत्य को भरने में समर्थ नहीं है, उसमें सत्य नहीं भरा जा सकता।

लेकिन तुम वापस लौट आए हो, तुमसे कुछ बात हो सकती है। सत्य की खोज तो छोड़ दो। जैसा कि तुमने मुझसे कहा था कि पानी भरना बंद करो, पहले इसके भीतर पेंदी होनी चाहिए। वही मैं तुमसे कहता हूं, ईश्वर और सत्य की खोज तो छोड़ दो, पहले उस मन की फिक्र करो, जो तुम्हारे भीतर है और जो सत्य की खोज करने जा रहा है।
हम सारे लोग खोज करने निकल पड़ते हैं बिना इस बात को देखे हुए कि जो मन खोज करने जा रहा है वह कैसा है। पहली बात तो यह है कि वह मन बहुत सीमित, बहुत क्षुद्र है, शब्दों की दीवाल में बंद है, और इसलिए सत्य को नहीं पा सकेगा। दीवाल तोड़नी जरूरी है। और कोई दूसरी दीवाल नहीं है। स्मरण रखिए! मन के ऊपर शब्दों के अतिरिक्त और कोई दीवाल नहीं है। अगर शब्द अलग हो जाएं, तो मन एकदम निराकार हो जाएगा। कभी आपने सोचा, कभी अपने मन के भीतर खोजी यह बात कि अगर शब्द न हों तो वहां क्या होगा? अगर कोई भी शब्द न हो, तो भीतर क्या होगा? कोई दीवाल न होगी, कोई सीमा न होगी, मन निराकार हो जाएगा। कहीं किसी किनारे पर भी फिर मन को बांधने वाली कोई चीज न होगी। शब्द बांध रहे हैं। जितना ज्यादा शब्द बांध लेते हैं, उतना ही मन छोटा हो जाता है। जितने शब्द छूट जाते हैं, उतना ही मन बड़ा हो जाता है।
शब्दों को विदा करना है। पहली बात जो मैंने कही वह यह कि शब्द दीवाल हैं, कारागृह हैं, यह बोध होना चाहिए। दूसरी बात, इन शब्दों को विदा करना है, तो संग्रह करना बंद कर देना चाहिए। लेकिन हम तो सुबह से सांझ तक शब्दों का संग्रह करते हैं। सुबह उठते से ही हम अखबार की खोज करते हैं। फिर रेडियो को सुनते हैं। फिर मित्रों से बात करते हैं। फिर दिन भर है, फिर सांझ है और शब्द इकट्ठे हो रहे हैं। और कभी हम इस बात का खयाल नहीं रखते कि ये शब्द इकट्ठे करके आखिर में हम क्या करेंगे? ये सारे शब्द इकट्ठे हो जाएंगे। काम के, बेकाम; अर्थ के, अनर्थ, सब इकट्ठे हो जाएंगे। फिर मन उनसे क्या करेगा? लेकिन शब्दों को जितना हम इकट्ठा कर लेते हैं, एक तरह का पॉवर, एक तरह की ताकत हमको मिलती हुई मालूम पड़ती है। क्योंकि जो आदमी शब्दों के साथ खेलने में जितना कुशल हो जाता है, वह आदमी उतना ही लोगों पर प्रभावी हो जाता है। लोगों के ऊपर प्रभाव हो जाता है उसका। जितना शब्दों के साथ खेलने में उसकी कुशलता बढ़ जाती है, वह लोगों के साथ उतना ही कुशल हो जाता है। जितना शब्दों में कमजोर होता है, उतनी उसकी लोगों के साथ जीवन-कुशलता कम हो जाती है। शब्द कुशलता बढ़ाते हुए मालूम पड़ते हैं।
यह बात सच है। शब्द निश्चित ही कुशलता बढ़ाते हैं। जीवन के व्यवहार में एक इफिशिएंसी, एक कुशलता पैदा करते हैं। लेकिन शब्द भीतर इकट्ठे होते जाते हैं, और विचार इकट्ठे होते जाते हैं, और भीतर धूल इकट्ठी होती जाती है, कचरा इकट्ठा होता जाता है। और वे सब इतने ज्यादा भीतर इकट्ठे हो जाते हैं कि उनमें बंद मन फिर किसी तरह की उड़ान लेने में समर्थ नहीं रह जाता। शब्दों का व्यवहार करें। शब्दों की कुशलता उपयोगी है, लेकिन शब्दों
के गुलाम न बन जाएं। कोई शब्द आपको पकड़ने वाला न हो जाए। शब्द आपके हाथ के साधन हों, शब्द जीवन के साध्य न बन जाएं। इसका स्मरण रहे निरंतर, शब्द जीवन के लिए, बोलने के लिए, संबंधित होने के लिए जरूरी हैं लेकिन शब्द भीतर जंजीरें नहीं बन जाने चाहिए।
यह अगर निरंतर स्मरण हो, तो हम व्यर्थ के शब्द भी इकट्ठे नहीं करेंगे
और जिन शब्दों को इकट्ठा करेंगे, उनको भी हम अपनी जंजीरें न बनने देंगे। वे हमारे प्राणों के ऊपर पत्थर बन कर नहीं बैठ जाएंगे। हम उन्हें किन्हीं भी क्षण हटा दे सकते हैं। उनके साथ हमारा कोई मोह, कोई लगाव पैदा नहीं हो जाएगा। लेकिन अभी तो अगर हम एक शब्द भी आपको हटाने को कहें, तो इतना मोह और इतना लगाव मालूम होगा कि उसे कैसे हटा सकते हैं? अगर मैं आपसे कहूं कि आप इतनी हिम्मत करें कि मैं हिंदू शब्द को हटा दूं अपने मन से, तो आप कहेंगे, यह कैसे हो सकता है? क्योंकि इस शब्द को हटाऊंगा, तो फिर मैं, मैं क्या रह जाऊंगा? वह हिंदू होना जैसे हमारी संपत्ति और हमारी आत्मा है, जैसे उसे हम हटा नहीं सकते। यहूदी होने को नहीं हटा सकते हैं। मुसलमान होने को नहीं हटा सकते हैं। वह शब्द हमारे प्राणों पर बैठा है।

अभी एक गांव में मैं था। उस गांव के मुसलमान नवाब की पत्नी मुझसे मिलने आई और उसने मुझसे कहाः आपकी बातें तो मुझे ठीक मालूम पड़ीं, लेकिन तीन रात मैं सो नहीं सकी। मैंने बहुत कोशिश की कि इस मुसलमान होने की बात को हटा दूं, लेकिन इसे हटाना ऐसा लगता है जैसे कोई अपने प्राणों को अलग कर रहा हो।
शब्द अगर इस भांति मन को पकड़ते हों, तो गुलामी पैदा होती है, तो एक स्लेवरी पैदा होती है। तो शब्दों के साथ मोह नहीं होना चाहिए। उनका उपयोग होना चाहिए, जैसे आदमी वस्त्रों का उपयोग करता है। शब्द वस्त्र से ज्यादा नहीं होने चाहिए। उनके साथ कोई मोह, कोई लगाव, कोई आसक्ति, उनके साथ प्राणों का कोई गहरा संबंध बनाना एक गुलामी को निर्मित करना है। और जब यह गुलामी निर्मित हो जाए, तो फिर हम अपने ही हाथ से पैदा किए हुए जाल में फंस जाते हैं, जिसके बाहर निकलना कठिन हो जाता है। मैंने उस महिला को कहा कि अगर तुम्हारी इतनी भी सामर्थ्य नहीं है कि तुम एक शब्द को अपने से मुक्त कर सको, तो फिर क्या तुम सोचती हो कि यह मन जो इतना कमजोर और गुलाम है, क्या यह मन ईश्वर को जान सकेगा? जिसकी इतनी साहस और इतनी हिम्मत और इतना सा साहस नहीं है कि एक शब्द से छुटकारा पा सके। यह और किस चीज से छुटकारा पा सकेगा?
यह स्मरण रखना जरूरी है कि ये शब्द आते हैं, जाते हैं। इनके साथ कोई प्राणों का संबंध बांध लेना ठीक नहीं। तब चित्त एक निरंतर सतत मुक्ति की अवस्था में, सतत प्रवाह की अवस्था में हो सकता है। उत्तर पकड़ लिए जाते हैं। फिर उन उत्तरों के लिए हम मोहाविष्ट हो जाते हैं कि यही सत्य होना चाहिए। सत्य को बिना जाने मोहाविष्ट हो जाना कि यही सत्य होना चाहिए, बहुत खतरनाक है, गुलामी है। स्वतंत्रता चाहिए चित्त की। तभी तो चित्त शांत भी हो सकेगा, नहीं तो नहीं हो सकेगा। गुलाम चित्त कैसे शांत हो सकता है? गुलाम चित्त कमजोर चित्त है। यह स्मरण, यह प्रतीति, यह बोध कि शब्द जो मैं इकट्ठे कर रहा हूं वे मेरी गुलामी तो नहीं बन रहे हैं? यह निरंतर अगर खयाल हो, तो कोई कारण नहीं है कि कोई शब्द हमारी गुलामी बन जाए और कोई शब्द बाधा बन जाए।
निरंतर आपने देखा होगा। अगर हम किसी से कुछ बात करते हैं और विवाद करते हैं, तो विवाद सत्य के लिए नहीं होता, निरंतर शब्दों के लिए होता है। हम एक शब्द पकड़ लेते हैं, दूसरा आदमी दूसरा शब्द पकड़ लेता है और हम विवाद में पड़ जाते हैं। इसीलिए तो किसी विवाद, किसी आर्ग्युमेंट से कभी कोई निष्पत्ति नहीं निकलती, कोई कनक्लूजन नहीं निकलता। अगर शब्दों की पकड़ न हो, तो दो आदमी जो विवाद करेंगे और विचार करेंगे, वह विचार उन्हें कहीं ले जाएगा। किसी निष्पत्ति पर, किसी निष्कर्ष पर, किसी समाधान पर। लेकिन हम सब शब्दों को पकड़ लेते हैं। मेरा शब्द महत्वपूर्ण हो जाता है आपके शब्द से, क्योंकि वह मेरा है। और जो आपका है, वह आपका है। और जब हम विवाद करते हैं, तो यह सवाल नहीं होता कि सत्य क्या है, सवाल यह होता है कि मेरा क्या है? जो शब्द मेरा है वह जीतना चाहिए, क्योंकि उसकी जीत में मेरे अहंकार की जीत है।
शब्दों की जो गुलामी है, वह मेरे शब्दों के कारण पैदा होती है। जो शब्द मेरे हैं, उनका मैं गुलाम हो जाता हूं। कोई शब्द किसी का नहीं है। अगर गुलामी से मुक्त होना है, तो यह जानना चाहिए, शब्द कोई भी मेरा नहीं है। और तब चित्त अनप्रिज्युडिस्ड, निष्पक्ष हो जाएगा। तब किसी शब्द के लिए कोई लड़ाई नहीं है। तब हम किसी भी शब्द के लिए निष्पक्ष विचार करने को तत्पर हैं, उत्सुक हैं, खोज के लिए तैयार हैं। तो शायद इस दुनिया में फिर कोई विवाद न हो, अगर लोग शब्दों के साथ मेरे होने का मोह छोड़ें।
कौन सा शब्द आपका है? सिवाय इसके कि एक शब्द बचपन से आपके कान में बार-बार दोहराया गया है, और आपका उसमें क्या है? कौन सा शब्द आपका है? कौनसा सिद्धांत आपका है? कौनसा विचार आपका है? कोई भी तो आपका नहीं है। कोई भी विचार बार-बार दोहरा दिया जाए आपके मन में, वह आपको लगने लगेगा मेरा है। जो लोग बहुत कुशल होते हैं दूसरे लोगों को समझाने में, जीतने में, वे हमेशा एक तरकीब का उपयोग करते रहे हैं।

अब्राहिम लिंकन से एक बार उसके किसी मित्र ने पूछा कि आप हमेशा विवाद करने में विजयी क्यों हो जाते हैं? उसने कहाः मैं दूसरे आदमी को इस भांति का विश्वास दिलाने की कोशिश करता हूं कि जो मेरी मर्जी है, वह उसकी ही मर्जी है। जो बात मुझे उसे मनवानी होती है, जिस बात के लिए मुझे उसे कनविंस करवाना होता है, मैं इस भांति की कोशिश करता हूं जैसे कि वह उसकी ही मर्जी है। और जैसे ही उसे यह खयाल पकड़ जाता है कि यह उसकी मर्जी है, मैं जीत जाता हूं, वह हार जाता है। हालांकि उसे लगता है कि वह जीता।
अब्राहिम लिंकन ने कहा कि मेरा एक मित्र एक मामले में बिल्कुल जिद्द पकड़े हुए था। मैंने आठ-दस दिन के लिए बात उस संबंध में करनी बंद कर ली। एक दिन रास्ते में चलते हुए मैंने उससे कहा कि मुझे ऐसा खयाल आता है, एक दिन तुमने ऐसी कोई बात कही थी--वह बात वही थी जो मुझे मनवानी थी, और यह बात बिल्कुल झूठ थी कि उसने कभी मुझसे उस बात को कहा हो--लेकिन मैंने उससे कहा कि मुझे खयाल आता है कि कभी तुमने ऐसी कोई बात मुझसे कही थी। उसने कहाः मुझे तो खयाल नहीं आता। लेकिन मैंने उसे खयाल दिलाने की कोशिश की कि एक दिन बातचीत के दौर में तुमने ऐसा कुछ कहा था। और वह धीरे-धीरे सहमत हुआ और राजी हो गया। उस बात पर राजी हो गया जिस पर आठ दिन पहले वह विवाद करने को तैयार था। कौनसी कमजोरी इस लिंकन ने उस आदमी की पकड़ ली? एक कमजोरी पकड़ ली, उसे यह खयाल आ जाए कि यह बात मेरी है, तो बात पूरी हो गई।
दुनिया में जो बड़े नेता हैं, वे जनता को यह विश्वास दिलाया करते हैं
कि आप जो कहते हो वही हम कह रहे हैं। जो आपकी मर्जी, वही हमारा विचार है। और लोग ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों के लिए भी राजी हो जाते हैं जिनका कोई हिसाब नहीं। एक दफा उन्हें विश्वास आ जाए कि वह विचार उनका है, मेरा है। बस फिर, फिर कुछ भी करवाया जा सकता है। हिंदू धर्म मेरा है, तो फिर मेरी हत्या करवाई जा सकती है। मुसलमान धर्म मेरा है, तो फिर मैं अपनी गर्दन कटवा सकता हूं। वह जो मेरा है, वह बहुत बलवान है और वह मेरे मन को पकड़ लेता है।
यह जो शब्द और विचारों की सारी गुलामी है, यह मेरे की वजह से पैदा हुई है। इसको अगर तोड़ना है, तो एक बात जान लेनी है, कोई शब्द मेरा नहीं है, कोई विचार मेरा नहीं है। सब विचार उधार हैं और सब विचार किसी खास तरह के प्रोपेगेंडा का परिणाम हैं। मैं हिंदू घर में पैदा हुआ हूं, तो हिंदू प्रोपेगेंडा के भीतर पला हूं। बचपन से मुझे कहा गया है कि कृष्ण जो हैं भगवान हैं, और गीता जो है भगवान की किताब है। मुझे बचपन से यह बात कही गई है। मैंने बार-बार इसे सुना है। धीरे-धीरे मुझे यह अहसास आ गया है कि यह मेरा खयाल है कि कृष्ण जो हैं भगवान हैं, गीता जो है भगवान की किताब है। यह मेरा खयाल है। यह बीस-पच्चीस वर्ष, पचास वर्ष तक निरंतर दोहराने का परिणाम है कि मुझे लगता है यह मेरा खयाल है। इसमें मेरा क्या है? अगर मुझे मुसलमान घर में रखा गया होता, तो मेरा खयाल यह होता कि कुरान जो है वह भगवान की किताब है। और अगर मुझे ईसाई घर में रखा गया होता, तो मेरा खयाल यह होता कि बाइबिल जो है वह ईश्वर की किताब है।
बचपन से जो प्रोपेगेंडा है, प्रचार है, उसका परिणाम है कि लगता है कि
ये मेरे शब्द, यह मेरा धर्म है, यह मेरा देश, यह मेरी जाति, ये शब्द मेरे हैं और वे शब्द मेरे नहीं हैं। फिर गुलामी खड़ी हो जाती है। आज तक हम बच्चों के मन गुलाम बनाते रहे हैं। एक अच्छी दुनिया पैदा नहीं हो सकी, क्योंकि मां- बाप ने निरंतर यह कोशिश की है कि जिस गुलामी में वे कैद हैं, उनका बच्चा उस गुलामी के बाहर न हो जाए, वह भी उसी कारागृह में बड़ा हो। हर बाप, हर मां की यह कोशिश रही है आज तक कि जिस गुलामी में वे हैं, बच्चा उस गुलामी के बाहर न हो जाए।
शायद एक डर था इसमें और वह केवल यह था कि अगर वह मेरी गुलामी से बाहर हुआ, तो वह किसी दूसरे की गुलामी में पड़ जाएगा। अगर वह हिंदू घेरे के बाहर हुआ तो पता नहीं मुसलमान हो जाए, ईसाई हो जाए। इसके पहले कि वह ईसाई या मुसलमान हो, उसे हिंदू बना देना जरूरी है। और दुनिया में जितने धर्म हैं, वे चूंकि सभी एक न एक तरह की गुलामियां हैं। इसलिए हर बाप परेशान है और डरा हुआ है कि मेरा बच्चा कहीं इस गुलामी को छोड़ कर उस गुलामी में न चला जाए। क्योंकि अपनी गुलामी फिर भी अपनी है, पराई तो नहीं है। अपनी अकेली नहीं है,

बाप-दादाओं से, हजारों वर्षों से है, परंपरागत है। जो अपनी है, वह गुलामी हो, तो भी अच्छी मालूम पड़ती है। इस वजह से आज तक दुनिया में स्वतंत्र मन पैदा नहीं हो सका। इस वजह से अब तक हम स्वतंत्र मनुष्य को जन्म नहीं दे पाए। और गुलाम मनुष्य की जो तकलीफें हैं वे हम सबको झेलनी पड़ रही हैं और हम झेलते रहेंगे। लेकिन क्या यह हमेशा ही चलाए जाइएगा? क्या कोई रास्ता नहीं खोजना है कि बदलाहट हो सके? क्या कोई फिक्र नहीं करनी है कि क्रांति आ सके और हम स्वतंत्र मनुष्य को जन्म दे सकें?
लेकिन आप अपने बच्चों के लिए स्वतंत्रता के मार्गद्रष्टा तभी हो सकेंगे, जब आप स्वतंत्र हो जाएं। और स्वतंत्र होने के लिए जरूरी है पहली बात, अपने मन से यह खयाल अलग कर दें कि कोई विचार मेरा है। यह मेरे का खयाल टूट जाए और आप पाएंगे, आप एकदम निष्पक्ष हो गए, एकदम मुक्त हो गए, सारी जंजीरें जैसे टूट गईं, सारी प्रिज्युडिस, सारे पक्ष गिर गए। और अगर आप अपने बच्चों को भी इस निष्पक्ष चित्तता में विकसित कर सकें और उन्हें समझा सकें कि जो तुमने नहीं जाना है, वह तुम्हारा नहीं है। चाहे मैं कहूं, चाहे कोई भी कहे, चाहे हजारों साल की परंपरा कहे, लेकिन तुम किसी शब्द के और सिद्धांत के गुलाम मत हो जाना। तुम खोजना, तुम खुद खोज करना, तुम इंक्वायरी करना, अपने मन को ताजा रखना हमेशा खोजने के लिए। तो शायद बच्चे आने वाली दुनिया में एक स्वतंत्र मनुष्य की जाति को जन्म देने में समर्थ हो जाएं।
लेकिन उसके पहले उन सारे लोगों को स्वतंत्र होना होगा--हम सारे लोगों को, मुझे, आपको। दूसरी बात है, मेरे का खयाल छोड़ देना आवश्यक है। और तीसरी बात, पहली बात तो यह बोध कि शब्द कारागृह हैं, दूसरी बात कि शब्द मेरे नहीं हैं और तीसरी बात, शब्द के साक्षी होने की सामर्थ्य पैदा करनी चाहिए, विटनेस होने की सामर्थ्य पैदा करनी चाहिए।
मन में शब्द घूम रहे हैं, घूम रहे हैं। थोड़ी देर को कभी एकांत में बैठ
कर केवल उनके साक्षी हो जाना चाहिए। जैसे रास्ता चल रहा हो और लोग निकल रहे हों और कोई बैठ जाए और सिर्फ साक्षी हो जाए और लोगों को निकलने दे। ऐसे ही विचार को भी निकलने देना चाहिए, शब्द को भी निकलने देना चाहिए और दूर खड़े होकर देखना चाहिए।
क्या होगा दूर खड़े होकर देखने से? जैसे ही दूर खड़े होकर कोई शब्दों के जुलूस को देखेगा, एक प्रोसेशन है जो चल रहा है पूरे वक्त मन में, दूर खड़े होकर जो भी शब्दों के इस प्रोसेशन को, इस जुलूस को देखेगा, उसे एक बात तो यह पता चलेगी कि मैं अलग हूं और शब्द अलग हैं। और दूसरी बात उसे यह पता चलेगी एक शब्द के जाने और दूसरे के आने के बीच में इंटरवल है, अंतराल है, खाली जगह है। हर दो शब्दों के बीच में थोड़ा गैप है। जो व्यक्ति अपने भीतर थोड़ा दूर खड़े होकर शब्दों की चलती हुई धारा को देखेगा, उसे दो बातें दिखाई पड़ेंगी। पहली, शब्द अलग हैं, मैं अलग हूं। दूसरी बात, हर शब्द के जाने और दूसरे के आने के बीच में गैप है, खाली जगह है। उसी खाली जगह में साइलेंस का अनुभव होगा। शब्दों के बीच खाली जगह है।
हम यहां इतने लोग बैठे हैं, अगर कोई हवाई जहाज से देखे, तो उसे हमारे बीच में खाली जगह दिखाई नहीं पड़ेगी। लेकिन वह धीरे-धीरे करीब आए। एक जंगल को आप हवाई जहाज से देखें तो दरख्तों के बीच खाली जगह दिखाई नहीं पड़ेगी। नीचे आएं, तो धीरे-धीरे एक दरख्त और दूसरे दरख्त के बीच में खाली जगह का पता चलेगा।
अभी आप यहां बैठे हैं, मैं इतने दूर से देखता हूं, आपके बीच की खाली जगह मुझे पता नहीं चलती। लेकिन आपके करीब आऊं, तो आपके पास खाली जगह है। अगर खाली जगह न हो, तो आप बैठ ही नहीं सकते थे। दो आदमियों के बीच खाली जगह जरूरी है। दो शब्दों के बीच भी खाली जगह है। नहीं तो एक शब्द दूसरे शब्द के ऊपर चढ़ जाएगा। मैं अभी बोल रहा हूं, कितने हजारों शब्द बोले। हर शब्द और दूसरे शब्द के बीच में खाली जगह है, नहीं तो आप कुछ समझ नहीं सकेंगे। हमारे मन के भीतर भी जो विचार चल रहे हैं, शब्द और शब्द के बीच में खाली जगह है। लेकिन हमने कभी ठहर कर इसे देखा नहीं। हम इसे ठहर कर देखेंगे निकट जाकर, तो ये इंटरवल्स हमें दिखाई पड़ेंगे। और ये जो इंटरवल्स हैं, ये

जो शब्दों के बीच में खाली जगह हैं, वहीं से आपको पहली दफे साइलेंस का अनुभव होगा, शांति का अनुभव होगा, मौन का अनुभव होगा। और जैसे ही आपको शांति का अनुभव होगा, वैसे ही आपको पता चलेगा, शब्दों में कारागृह था, शांति में मुक्ति है। शब्दों में जेल थी, शांति में स्वतंत्रता है। यह आपको पता चलेगा। यह मेरे कहने से पता नहीं चल सकता। यह किसी और के कहने से पता नहीं चल सकता। यह तो उस शांति का जैसे ही अनुभव होगा, जैसे शब्दों के बीच में खाली जगह मिलेगी और आप उसमें डूब जाएंगे तो आप पाएंगे, शब्द बंधन हैं, शून्य स्वतंत्रता है; शब्द कारागृह हैं, शून्य मोक्ष है। और एक बार भी इस साइलेंस का अहसास शुरू हो जाए, तो कोई भी आदमी शब्दों से भरा न रहना चाहेगा।
एक बच्चा पत्थर बीन रहा हो नदी के किनारे और उसे कोई हीरे-जवाहरात देने वाला मिल जाए, तो वह पत्थर फेंक देगा और हीरे-जवाहरात पकड़ लेगा। आपको पता ही नहीं है कि साइलेंस क्या है, इसीलिए शब्दों से उलझे हुए हैं और परेशान हैं। एक बार पता चल जाए, एक बार यह पता चल जाए कि क्या है शांति? क्या है मौन? तो फिर आप शब्दों को पकड़ने वाले न रह जाएंगे। उसी दिन से आपकी जिंदगी में क्रांति हो जाएगी। आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। लेकिन पता ही नहीं है। और कठिनाई यह है कि कोई दूसरा आपको बता नहीं सकता। खुद ही जानना होगा, खुद ही पहुंचना होगा।
तीन सूत्र मैंने आपसे कहे। पहली बात, शब्द कारागृह हैं, इसका अनुभव। दूसरी बात, शब्द मेरे नहीं हैं, इसका अनुभव। तीसरी बात, शब्दों के बीच में खाली जगह है, इसका अनुभव। यह तीसरी बात सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पहली दो बातें उसकी भूमिका है, तीसरी बात महत्वपूर्ण है।
थोड़ी देर कभी रात बिस्तर पर पड़े हुए शब्दों के साक्षी मात्र रह जाएं।
मन में चल रही हैं उनकी धाराएं, चुपचाप आंख बंद करके अंधेरे में उनको देखते रहें--क्या हो रहा है? कौन से विचार चल रहे हैं? उन्हें जाने दें, रोकना नहीं है, छेड़ना नहीं है, चलने दें, सिर्फ देखें। दूर जैसे खड़े हैं और देख रहे हैं। अपने आप बीच की खाली जगह दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी। और रोज-रोज जितना यह साक्षी होने का क्रम गहरा होगा, खाली जगह बड़ी होती जाएगी। जैसे-जैसे आप देखने में समर्थ हो जाएंगे अपने भीतर, उतने-उतने बड़े गैप्स, उतनी-उतनी खाली जगह पैदा हो जाएगी। एक क्षण आएगा शब्द नहीं होगा, फिर शब्द आएगा, धीरे-धीरे कई क्षण बीत जाएंगे शब्द नहीं होंगे। धीरे-धीरे वक्त आएगा, घड़ियां बीत जाएंगी और शब्द नहीं होंगे। और जब शब्द नहीं होंगे तो कौन होगा? क्या होगा? जब शब्द नहीं होंगे तो मन की सारी क्षुद्रता टूट जाएगी, सारी दीवालें टूट जाएंगी। रह जाएगा मन, जिसकी कोई सीमा नहीं है। उसी मन का नाम आत्मा है जिसकी कोई सीमा नहीं है। रह जाएगा मन, जिस पर कोई दीवाल नहीं है। उसी मन का नाम परमात्मा है जिसकी कोई दीवाल नहीं है। रह जाएगा एक विराट चैतन्य, जो मुझमें सीमित नहीं है, जो सबमें व्याप्त है और सबमें फैला हुआ है। उसकी जो प्रतीति है वही आनंद है, वही सत्य है, वही अमृत है।
एक छोटी सी कहानी और मैं अपनी चर्चा को पूरा करूंगा।
एक बहुत पुराने देश में और बहुत पुराने दिनों में एक राजा ने एक अदभुत दान उस देश के सौ ब्राह्मणों को दिया था। उसने कहा था कि मेरे पास एक बड़ी भूमि है, तुम इस भूमि में से जितनी घेर लोगे तुम्हारी हो जाएगी। बहुमूल्य भूमि थी, राजा ने अपने जन्म-दिन के उत्सव में देश के सौ बड़े ब्राह्मणों को बांट देनी चाही थी। वे ब्राह्मण तो खुशी से नाच उठे। एक ही शर्त थी, जो जितनी उस जमीन को घेर लेगा, जितनी बड़ी दीवाल बना लेगा जमीन पर, वह जमीन उसकी हो जाएगी। अब सवाल यही था कि कौन कितनी बड़ी बना ले? ब्राह्मणों ने अपने घर-द्वार बेच दिए, अपने कपड़े भी बेच दिए, एक-एक लंगोटियां भर बचा लीं, क्योंकि सस्ते में बहुत बहुमूल्य जमीन मिलती थी। और उन्होंने दीवालें बनाईं। और जितनी जो जमीन घेर सकता था उसने घेर ली। इस घेरने में एक और आकर्षण था, राजा ने यह भी कहा था कि जो सबसे ज्यादा जमीन घेरेगा उसे मैं राजगुरु बना दूंगा।

तो एक तो जमीन घेरने का फायदा था, बहुमूल्य जमीन मुफ्त, सिर्फ घेरने
के मूल्य पर मिलती थी। और दूसरा, सबसे ज्यादा घिर जाए तो राजा के राजगुरु होने का भी सौभाग्य मिलता था।
छह महीने का वक्त दिया था। फिर छह महीने के बाद राजा गया और उन ब्राह्मणों से कहाः मैं खुश हूं कि तुमने काफी जमीनें घेरी हैं, अब मैं पूछने आया हूं कि सबसे ज्यादा जमीन का घेरा किसका है?
एक ब्राह्मण खड़ा हुआ और उसने कहा कि इसके पहले कि कोई कुछ कहे, मैं दावा करता हूं कि मेरा ही घेरा सबसे बड़ा है।
सारे ब्राह्मण हंसने लगे, राजा भी हंसा, क्योंकि वह गांव का दरिद्रतम ब्राह्मण था और किसी को भी यह आशा नहीं थी कि उसने बड़ा घेरा बनाया होगा। और ब्राह्मणों को तो भलीभांति पता था कि उसने छोटा सा घेरा बनाया है, कुछ थोड़ी सी लकड़ी-वगैरह लगा कर, थोड़ी सी जमीन घेरी है। लेकिन जब दावा किया गया था तो निरीक्षण के लिए राजा को जाना पड़ा। वे सौ ब्राह्मण भी गए। वहां जाकर, पहले ही सबको शक हुआ था कि मालूम होता है उसका दिमाग खराब हो गया है। क्योंकि लोगों ने तो मीलों लंबे जमीन के टुकड़े घेर लिए थे। वहां जाकर तो निश्चय हो गया कि वह पागल हो गया है। उसने थोड़ा सा जमीन का टुकड़ा घेरा था, कुछ लकड़ियां बांधी थीं, लेकिन रात, मालूम होता था उसमें भी उसने आग लगा दी थी। अब वहां कोई घेरा नहीं था। सारी लकड़ियां जली हुई पड़ी थीं। राजा ने कहाः मैं समझ नहीं पा रहा, आपकी दीवाल कहां है?
उस ब्राह्मण ने कहाः मैंने दीवाल बनाई थी, मैंने लकड़ियां लगाई थीं, लेकिन फिर रात मुझे खयाल आया कि चाहे मैं कितनी ही बड़ी जमीन घेर लूं, जो जमीन घिरी हुई है वह छोटी ही होगी, बड़ी नहीं हो सकती। आखिर जो चीज घिरी है वह छोटी ही होगी, बड़ी नहीं हो सकती। तो रात मैंने अपने घेरे में आग लगा दी। अब मेरी जमीन पर कोई घेरा नहीं है। इसलिए मैं दावा करता हूं कि मैंने सर्वाधिक जमीन घेरी है। कोई घेरा नहीं मेरी जमीन पर।
राजा उसके पैरों पर गिर पड़ा और उसने कहाः तुम अकेले ही ब्राह्मण हो, बाकी सभी वैश्य हैं। वे निन्यानबे लोगों ने जमीन घेरी है, गणित का हिसाब रखा है, नाप-जोख की है। तुम अकेले आदमी ब्राह्मण हो। तुम्हारा जो घेरा था वह भी तुमने तोड़ दिया। जिसका कोई घेरा नहीं है वही तो ब्रह्म को जान पाता है, वही तो ब्राह्मण हो जाता है।
वह ब्राह्मण राजगुरु बना दिया गया। उसने एक अदभुत साहस किया, घेरा तोड़ देने का साहस। और घेरा तोड़ते ही सब कुछ उसका हो गया।
यह कहानी अंत में इसलिए कह रहा हूं, मन पर घेरे हैं और मन के घेरे को जो तोड़ देगा वह ब्रह्म को जान लेता है। मन के नाप-जोख हैं, इंच-इंच, फीट-फीट बना कर हमने दीवाल खड़ी की है, उसी दीवाल में हम जिंदा रहने के आदी हो गए हैं, उसी से हम पीड़ित और परेशान हैं, और उसी के कारण हम क्षुद्र हो गए हैं। और विराट, जो कि निरंतर मौजूद है परमात्मा, उससे हमारा कोई संबंध नहीं रह गया है। उससे संबंध हो सकता है। लेकिन जो उस ब्राह्मण ने किया था उस रात, किसी रात आपको भी वही करना पड़ेगा। उसने जो घेरा बनाया था, आग लगा दी थी। जिस दिन, जिस रात आप भी अपने घेरे में आग लगाने को राजी हो जाएंगे, उस दिन परमात्मा और आपके बीच फिर कोई दीवाल नहीं और कोई रोकने वाला नहीं। और उस सत्य को जान कर ही--जो ऐसा घेरे से मुक्त मन जान पाता है--जान सकेंगे जीवन के आनंद को, जीवन के सौंदर्य को, जीवन के प्रेम को, उसके पहले सब दुख है और सब नरक है। उसके पहले सब अंधकार है। उसके पहले सब पीड़ा और मृत्यु है। उसके बाद न पीड़ा है, न मृत्यु; उसके बाद न दुख है, न दैन्य; उसके बाद जो भी है वह परम आनंद है और परम शांति है। उसे जान लेना ही, उसे पा लेना ही जीवन का लक्ष्य है। और जो उसे पाने से वंचित रह जाता है उसका जीवन व्यर्थ ही चला जाता है। वह कंकड़-पत्थर बीनने में गंवा देता है और हीरे-जवाहरातों के ढेर उसके निकट थे उनको नहीं देख पाता। वह मिट्टी को बांधने में गंवा देता है, सोने की खदानें उसके पास थीं, उनको नहीं देख पाता। वह क्षुद्र को कमाने में विराट की संपदा को पाने से वंचित रह जाता है।
आज की संध्या थोड़ी सी बात मैंने आपसे कही, शब्द के घेरों और दीवाल से मुक्त हो जाने की। इस संदर्भ में बहुत प्रश्न उठे होंगे, क्योंकि जिसको

प्रश्न न उठे हों, वह तो आज की रात ही अपने घेरे में आग लगाने में समर्थ हो सकता है। लेकिन नहीं, प्रश्न उठे होंगे। मैं जब बोलता था तब आपके भीतर बहुत से शब्द चल रहे होंगे। तो उन प्रश्नों के, उन प्रश्नों की हत्या के लिए कल का समय निश्चित है। तो जो-जो प्रश्न उठे हों, वे कल पूछे जा सकते हैं। इस खयाल से नहीं कि मैं उनके उत्तर दूंगा, बल्कि इस खयाल से कि उनकी हत्या में आपका सहयोगी हो सकूं। उत्तर देने वाला मैं कौन हूं? और मेरा तो कहना ही यह है कि उत्तर इकट्ठे मत करना। फिर भी कल इस संबंध में जो भी पूछने का खयाल आया हो उसकी बात करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना। तो यह आशा करता हूं कि किसी न किसी दिन वह अदभुत क्षण आपके जीवन में उतरेगा, जब आप अपनी क्षुद्रता को तोड़ने में समर्थ हो जाएंगे। जिस दिन अपनी क्षुद्रता को तोड़ लेंगे मन की, उसी दिन परमात्मा आपका है। वह परमात्मा तो भीतर मौजूद है, लेकिन हम उसे अपनी दीवाल के कारण अनुभव नहीं कर पाते। वह परमात्मा जो आपके भीतर कैद है उसके प्रति मैं प्रणाम करता हूं, अंत में मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

आनंद की खोज
दूसरा प्रवचन

जीवंत शांति शक्तिशाली है

मनुष्य के मन पर शब्दों का भार है; और शब्दों का भार ही उसकी मानसिक गुलामी भी है। और जब तक शब्दों की दीवालों को तोड़ने में कोई समर्थ न हो, तब तक वह सत्य को भी न जान सकेगा, न आनंद को, न आत्मा को। इस संबंध में थोड़ी सी बातें कल मैंने आपसे कहीं।
सत्य की खोज में--और सत्य की खोज ही जीवन की खोज है--स्वतंत्रता सबसे पहली शर्त है। जिसका मन गुलाम है, वह और कहीं भला पहुंच जाए, परमात्मा तक पहुंचने की उसकी कोई संभावना नहीं है। जिन्होंने अपने चित्त को सारे बंधनों से स्वतंत्र किया है, केवल वे ही आत्माएं स्वयं को, सत्य को और सर्वात्मा को जानने में समर्थ हो पाती हैं।
ये थोड़ी सी बातें कल मैंने आपसे कहीं। उस संबंध में बहुत से प्रश्न मेरे पास आए हैं।

सबसे पहले एक मित्र ने पूछा है कि यदि हम शब्दों से मौन हो जाएं, मन हमारा शून्य हो जाए, तो फिर जीवन का, संसार का व्यवहार कैसे चलेगा?

हम सभी को यही भ्रांति है कि मन हमारे जितने बेचैन और अशांत हों, संसार का व्यवहार उतना ही अच्छा चलता है। यह हमारा पूछना वैसे ही है, जैसे बीमार लोग पूछें कि यदि हम स्वस्थ हो जाएं, तो संसार का व्यवहार कैसे चलेगा? पागल लोग पूछें कि हम यदि ठीक हो जाएं और हमारा पागलपन समाप्त हो जाए, तो संसार का व्यवहार कैसे चलेगा? बड़े मजे की बात यह है, अशांत चित्त के कारण संसार का व्यवहार नहीं चल रहा है, बल्कि संसार के चलने में जितनी बाधाएं हैं, जितने कष्ट हैं, संसार का जीवन जितना नरक है, वह अशांत चित्त के कारण है। यह जो संसार का व्यवहार चलता हुआ मालूम पड़ता है, इतने अशांत लोगों के साथ भी, यह बहुत आश्चर्यजनक है। शांत मन संसार के व्यवहार में बाधा नहीं है, बल्कि शांत मन इस संसार को ही स्वर्ग के व्यवहार में बदल लेने में समर्थ है। जितना शब्दों से मन शांत हो जाता है, उतनी ही जीवन में दृष्टि, अंतर्दृष्टि मिलनी शुरू हो जाती है। फिर भी हम चलेंगे, लेकिन वह चलना और तरह का होगा; फिर भी हम बोलेंगे, लेकिन वह बोलना और तरह का होगा; फिर भी हम उठेंगे, फिर भी जीवन का जो सामान्य क्रम है वह चलेगा, लेकिन उसमें एक क्रांति हो गई होगी।
भीतर मन यदि शांत हो गया हो, तो दो परिमाण होंगे। ऐसे मन से जो चर्या निकलेगी, जो जीवन निकलेगा, वह दूसरों में अशांति पैदा नहीं करेगा। और दूसरे लोगों के अशांत व्यवहार की प्रतिक्रिया में ऐसे चित्त में कोई अशांति पैदा नहीं होगी, बल्कि उस पर फेंके गए अंगारे भी उसके लिए फूल जैसे मालूम होंगे और वह खुद तो अंगारे फेंकने में असमर्थ हो जाएगा। संसार में इससे बाधा नहीं पड़ेगी, बल्कि संसार को हमने अपनी अशांति के द्वारा करीब-करीब नरक के जैसा बना लिया है, उसे स्वर्ग जैसा बनाने में जरूर सहायता मिल जाएगी। और चूंकि हम आज तक मनुष्य के मन को बहुत बड़े सामूहिक पैमाने पर शांति के मार्ग पर ले जाने में असमर्थ रहे हैं, इसीलिए हमें अपना स्वर्ग आकाश में बनाना पड़ा। यह जमीन पर हमारे अशांत मन के कारण हमें स्वर्ग आसमान में बनाना पड़ा। अगर मन शांत हो तो स्वर्ग को आकाश में बनाने की कोई जरूरत नहीं है, वह जमीन पर बन सकता है। स्वर्ग जब तक आकाश में रहेगा, तब तक इस बात को भलीभांति जानना चाहिए कि आदमी ठीक अर्थों में आदमी होने में समर्थ नहीं हो पाया। यदि वह ठीक अर्थों में आदमी हो जाए तो जमीन बुरी नहीं है और उस पर स्वर्ग बन सकता है। स्वर्ग का और क्या अर्थ है? जहां शांत लोग हों, वहां स्वर्ग है; जहां भले लोग हों, वहां स्वर्ग है।
सुकरात को उसके मरने के पहले कुछ मित्रों ने पूछा कि क्या तुम स्वर्ग जाना पसंद करोगे या नरक? तो सुकरात ने कहाः इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मैं कहां भेजा जाता हूं, मैं जहां जाऊंगा वहां मैं स्वर्ग का अनुभव करने

में समर्थ हूं। इससे कोई भेद नहीं पड़ता कि मैं कहां जाता हूं, मैं जहां जाऊंगा अपना स्वर्ग अपने साथ ले जाऊंगा। हर आदमी अपना स्वर्ग या अपना नरक अपने साथ लिए हुए है। और वह उसी मात्रा में अपने साथ लिए हुए है, जिस मात्रा में उसका मन शांत हो जाता है, शब्दों की भीड़ से मुक्त हो जाता है, मौन हो जाता है। जितनी गहरी साइलेंस होती है, उतना ही उसके बाहर एक स्वर्ग का घेरा, एक स्वर्ग का वायुमंडल उसके आस-पास चलने लगता है। इसलिए यह हो सकता है कि एक ही साथ बैठे हुए लोग, एक ही जगह पर न हों; यह हो सकता है कि आपके पड़ोस में जो बैठा है व्यक्ति, वह स्वर्ग में हो और आप नरक में। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उसका मन कैसा है? उसके मन की आंतरिक दशा कैसी है? उस आंतरिक दशा पर ही बाहर का सारा जीवन, देखने का ढंग, अनुभूतियां सभी परिवर्तित हो जाती हैं।
हमारे ही बीच महावीर या बुद्ध या क्राइस्ट जैसे लोग हुए हैं, जो हमारे
ही बीच थे, हमारी ही जमीन पर थे, लेकिन इसी जमीन पर उन्होंने उस आनंद को जाना जिसकी हमें कोई भी खबर नहीं है। कैसे? कौन से रास्ते से? कौन से मार्ग से? उनके पास शरीर हमारे जैसा ही था, उस शरीर पर बीमारियां भी होती थीं और उस शरीर को एक दिन मर भी जाना पड़ा। उनके पैर में भी कांटा चुभ जाता, तो खून बहता। और उनको भी गोली मार दी जाती, तो उनका शरीर समाप्त हो जाता। हड्डी और मांस हमारे ही जैसा था, भूख और प्यास हमारे ही जैसी थी, जिंदगी और मरण हमारे ही जैसा था। लेकिन फिर फर्क क्या था? फर्क था तो भीतर कोई फर्क था। भीतर मन और तरह का था। हमारा मन और तरह का है। मन शांत था, मन मौन था। इस मौन और शांति से भी उन्होंने जीवन को जीया और उस जीवन में से बहुत सी सुगंध पाई, बहुत सा संगीत पाया।
हम अशांति के द्वारा जीवन को जीते हैं और हम यह भी सोचते रहते हैं कि अगर हम शांत हो गए तो फिर जीवन कैसे चलेगा? जैसे जीवन अशांति से चल रहा हो। जीवन अशांति से चल नहीं रहा है, घिसट रहा है। जीवन अशांति से विकसित नहीं होता, केवल तड़पता है और परेशान होता है। और जीवन के व्यवहार का शांत हो जाने से कोई विरोध नहीं है। लेकिन शायद सैकड़ों वर्षों की शिक्षाओं ने हमारे मन में एक तरह का द्वंद्व, एक तरह का द्वैत पैदा कर दिया। सैकड़ों वर्षों से यह कहा जाता रहा है कि जिस व्यक्ति को शांत होना है उसे संसार छोड़ देना पड़ेगा। सैकड़ों वर्षों से यह बात समझाई गई है कि शांत होना, सत्य के मार्ग पर होना और संसार का व्यवहार, ये दोनों विरोधी बातें हैं।
मैं आपसे निवेदन करता हूं, यह बड़ी खतरनाक शिक्षा थी और इस शिक्षा के कारण ही जीवन धार्मिक नहीं हो पाया। इस शिक्षा के कारण ही जमीन आज भी अधार्मिक है। क्योंकि यह शिक्षा हमारे लिए एक एस्केप बन गई, एक पलायन बन गई, एक बचाव का रास्ता बन गई। हमने सोचा कि यदि संसार को चलाना है तो धर्म हमारे लिए नहीं है; और धर्म हमारे लिए उस दिन होगा जिस दिन हम संसार को छोड़ने को राजी होंगे। न हम संसार को छोड़ने को राजी होंगे और न धर्म से हमारा कोई संबंध होगा। धर्म से बचने के लिए हमने एक तरकीब खोज ली। यह शिक्षा, हमारे धर्म और हमारे बीच दूरी और फासला बन गई।
मैं आपसे निवेदन करता हूं, मन जितना स्वस्थ और शांत होगा, वह संसार का विरोधी नहीं होगा बल्कि संसार को ट्रांसफार्म करने में, संसार को नया जीवन देने में सहयोगी बनेगा। शांत आदमी संसार का शत्रु नहीं है बल्कि वही मित्र है। और जीवन का धर्म से कोई विरोध नहीं है और परमात्मा और संसार के बीच कोई दुश्मनी नहीं है। जीवन को ठीक से जीना ही परमात्मा को पाने का मार्ग है और धर्म या आंतरिक जीवन और शांति की खोज ठीक-ठीक अर्थों में हम कैसे जीएं, इस दिशा में हमारे पैरों को बढ़ाने की तरकीब और माध्यम और मार्ग है। इसलिए यह न सोचें कि मैंने कहाः मन शांत हो जाए, शब्दों से मुक्त हो जाए, तो आपका संसार और व्यवहार बिगड़ जाएगा। नहीं; वह अभी बिगड़ा हुआ है। अगर, अगर मन शांत हो सके, तो संसार में ही, इस सामान्य जीवनचर्या में ही, इस दैनंदिन जीवन में ही परमात्मा के दर्शन शुरू हो जाएंगे।
एक रात एक साध्वी एक गांव में मेहमान होना चाहती थी। लेकिन उस गांव के लोगों ने उसे ठहरने के लिए अपने दरवाजे न खोले। हर दरवाजे पर उसने प्रार्थना की कि आज की रात मैं यहां ठहर जाऊं, लेकिन द्वार बंद कर लिए गए--

जैसा कि मैंने कल कहा--वह साध्वी, वह अकेली महिला उस रात उस गांव में शरण मांगती थी, लेकिन उस गांव के लोगों का धर्म दूसरा था और साध्वी का धर्म दूसरा। इसलिए शरण देना संभव नहीं हुआ। एक शब्द बाधा बन गया। साध्वी किन्हीं और विचारों को मानती थी और गांव के लोग किन्हीं और विचारों को मानते थे। उस साध्वी को ठहरने की जगह नहीं मिली। आखिर उस सर्द रात में उसे गांव के बाहर एक वृक्ष के नीचे ही सो जाना पड़ा। रात कोई बारह बजे होंगे, तब ठंडी हवाओं में उसकी नींद खुल गई। उसने आंखें खोलीं, तो ऊपर पूर्णिमा का चांद वृक्ष के ऊपर खड़ा है और वृक्ष में रात के फूल चटक-चटक कर खिल रहे हैं। और उसने पहली बार आकाश में इतने सुंदर चांद को देखा, इतने एकांत में, इतने अकेलेपन में। और उसने पहली बार जीवन में उस वृक्ष पर रात के फूलों को खिलते हुए सुना। छोटी-छोटी बदलियां आकाश में तैरती थीं। वह उठी और मौन उस रात के सौंदर्य को उसने जाना और पीया। और फिर आधी रात को ही वह गांव में वापस पहुंच गई और उसने उन लोगों के द्वार खटखटाए जिन्होंने सांझ उसे शरण देने से इनकार कर दिया था। अंधेरी रात, आधी रात में वे घर के लोग उठे और उन्होंने पूछा, कैसे आई हो? हम तो सांझ को तुम्हें इनकार कर चुके। उस साध्वी ने कहाः मैं धन्यवाद देने आई हूं। काश, तुमने मुझे अपने घर में ठहरा लिया होता तो आज रात मैंने जो सौंदर्य जाना है वह मैं कभी भी न जान पाती। तो मैं तुम्हें धन्यवाद देने आई हूं कि तुमने मुझ पर कृपा की कि रात अपने घर में मुझे न ठहरने दिया। अन्यथा तुम्हारी दीवालें बहुत छोटी थीं और मैं उसमें मेहमान भी हो जाती, तो आकाश को न देख पाती और उस चांद को न देख पाती और उन फूलों को न सुन पाती जो खिल रहे हैं। तो मैं धन्यवाद देने आई हूं तुम्हारे पूरे गांव को, तुमने मुझ पर जो कृपा की है वह बहुत बड़ी है। यह साध्वी के, यह प्रतिक्रिया, आपमें होती? किसी दूसरे व्यक्ति में होती? असंभव है। दूसरा व्यक्ति तो इतने क्रोध से भर जाता, इतने वैमनस्य से, इतनी घृणा से, इतने अपशब्दों से कि शायद उसे नींद भी न आती। और इतने अपशब्दों और क्रोध से भरे होने के कारण उसे चांद भी दिखाई न पड़ता। और अपने भीतर इतने शोरगुल की वजह से, उसे फूलों के खिलने की खबर भी न मिलती। वह रात तो वैसी ही आती, चांद भी निकलता, फूल भी खिलते, लेकिन वह क्रोध से भरा हुआ मन, वह अशांत मन उस सबको न देख पाता और उस गांव के प्रति सदा के लिए एक शत्रुता का भाव उसके मन में पैदा हो जाता।
हम सारे लोगों का मन भी संसार के प्रति जो इतनी शत्रुता से भर गया है, उसका कारण यह नहीं है कि संसार में चांद नहीं उगता और फूल नहीं खिलते; उसका यह कारण नहीं है कि संसार में सौंदर्य की कोई कमी है; उसका यह कारण नहीं है कि संसार में सत्य का कोई अभाव है; उसका यह भी कारण नहीं है कि संसार में चारों तरफ से परमात्मा की वर्षा नहीं हो रही है; या कि प्रकाश की किरणों ने आना बंद कर दिया है; या कि जीवन मृत हो गया है। नहीं; आज भी फूल खिलते हैं; आज भी चांद निकलता है; आज भी परमात्मा की रोशनी चौबीस घंटे वर्षा करती है; आज भी चारों तरफ उसकी ध्वनि उठती है। लेकिन हमारे पास वह मन नहीं है, जो उसे जान सके, देख सके और पहचान सके। उसे जानने और पहचानने के लिए चाहिए एक शांत, एक साइलेंट माइंड; तो चारों तरफ संसार दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा। मैं आपसे निवेदन करूं, संसार कहीं भी नहीं है, सिवाय हमारे अशांत मन के। संसार हमारे अशांत मन का प्रोजेक्शन है, हमारे अशांत मन की प्रतिछाया है। और अगर हमारा मन शांत हो जाए, तो संसार कहीं भी नहीं है। फिर जो शेष रह जाता है, वह परमात्मा है, संसार नहीं। दो चीजें नहीं हैं, संसार और परमात्मा, ऐसी दो चीजें कहीं भी नहीं है। ऐसी दो चीजें कभी भी नहीं रहीं। या तो संसार है या परमात्मा है। हम अशांत होते हैं, तो हमें जो अनुभव में आता है, वह संसार है और हम शांत हो जाते हैं, तो हमें जो अनुभव में आता है, वह परमात्मा है। परमात्मा और संसार जैसी दो चीजें नहीं हैं। दो तरह के मन हैं, शांत मन और अशांत मन। शांत मन न तो व्यवहार में बाधा है, न संसार में, बल्कि जैसे-जैसे भीतर शांति गहरी होती चली जाती है, बाहर सब कुछ परिवर्तित होने लगता है। एक दूसरे ही जगत का, एक दूसरे ही सत्य का आविर्भाव होने लगता है। कुछ और ही दिखाई पड़ने लगता है वहीं, जहां हमें पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी कभी दिखाई नहीं पड़ा। कुछ और ही दिखाई पड़ने लगता है वहीं, जहां हमें

शरीरों के अतिरिक्त और कभी कोई स्पर्श न हुआ। अपार्थिव का प्रारंभ हो जाता है, अशरीरी का बोध शुरू हो जाता है।
हमारे देखने और हमारे मन की गहरी क्षमता पर, हमारी रिसेप्टिविटी पर, हमारी ग्राहकता पर निर्भर करता है कि क्या हमें अनुभव हो... हम अशांत होंगे, तो निश्चय मानिए, बाहर जहां-जहां अशांति है उसके अतिरिक्त आपको और कुछ भी अनुभव नहीं होगा। आपका अशांत मन केवल अशांति को जानने में ही समर्थ है। समान के पास समान खिंचा हुआ चला आता है। जब भीतर अशांति होती है, तो चारों तरफ से अशांति हमारी तरफ चुंबक की तरह खिंचने लगती है। इसमें उस अशांति का कोई कसूर नहीं है। हमने जो अशांति का गड्ढा बनाया हुआ है, वह अशांति को खींचने लगता है। और जब हमारे भीतर शांति होती है, तो चारों तरफ से शांति के झरने हमारी तरफ बहने शुरू हो जाते हैं। इसलिए इस जमीन पर जो आदमी जैसा होता है वैसा ही अनुभव कर लेता है। यह जमीन न तो बुरी है और न भली। यहां न स्वर्ग है और न नरक। न यहां अंधकार है और न प्रकाश। यहां तो हम जैसे होते हैं वैसे का ही हमें अनुभव हो जाता है, वैसे का ही हमें साक्षात हो जाता है। हम उसी से टकरा जाते हैं, जो हम हैं। प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने को ही सुनता और अहसास करता है।
इसलिए यह न सोचें कि मन शांत हो जाएगा, तो सब बंद हो जाएगा। नहीं; मन शांत होगा, तो ही सबकी शुरुआत होगी। अभी तो करीब-करीब सब बंद है। अभी तो हमारे जानने की न कोई क्षमता है और न कोई विराट शक्ति है। अभी तो जानने वाला मन ही नहीं है। क्योंकि जानने की पहली शर्त हैः शांत हो जाना। अनुभव करने की पहली शर्त हैः शांत हो जाना। प्रेम को पाने की पहली शर्त हैः शांत हो जाना। कोई अपने घर में द्वारों को बंद किए बैठा हो, तो सूरज बाहर खड़ा रहेगा; द्वारों पर आवाज नहीं करेगा, थपकी नहीं देगा, द्वार पर दस्तक नहीं देगा कि द्वार खोलो, सूरज बाहर प्रतीक्षा करेगा। और अगर हम द्वार बंद किए ही बैठे रहें, तो हम अपने हाथों अपने लिए अंधकार पैदा कर लेते हैं। परमात्मा भी निरंतर सबके द्वार पर खड़ा है, लेकिन हम मन के द्वार बंद किए बैठे हैं। तो परमात्मा प्रतीक्षा करेगा और हम अपने अंधकार में बैठे रहेंगे। मन को शांत करने, मन को शब्दों से मुक्त करने का अर्थ है, मन के सारे द्वार और दीवालों को गिरा देना, ताकि मन के ऊपर कोई आवरण न रह जाए, मन के ऊपर कोई बंधन न रह जाए, मन के ऊपर कोई दीवाल न रह जाए, कोई कारागृह न रह जाए, तो फिर आ जाएगा वह प्रकाश जो चारों तरफ मौजूद है और हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।
परमात्मा हमारे ऊपर हिंसा नहीं करना चाहता है, इसलिए बाहर दरवाजे पर प्रतीक्षा करता है कि हम अपने द्वार खोलें। लेकिन हम अपने द्वार ही न खोलें, तो अंधकार में हम अपने हाथ से जीते हैं।
शांत मन का अर्थ हैः द्वार खोलना। शांत मन का अर्थ हैः दीवाल को तोड़ना। शांत मन का अर्थ हैः असीम के साथ तालमेल, असीम के साथ संबंध को स्थापित करना। उससे संसार मिटेगा नहीं, बल्कि संसार ही स्वर्ग बन जाएगा। उससे जीवन के संबंध नष्ट नहीं होंगे, जैसा कि हमें सिखाया गया है। हमें सिखाया गया है कि जो परमात्मा का हो जाएगा, वह पत्नी का नहीं रह जाएगा, वह व्यक्ति वह अपने बच्चों का नहीं रह जाएगा, वह अपने घर का नहीं रह जाएगा, वह अपने संबंधियों का नहीं रह जाएगा। यह झूठ है बात, एकदम झूठ। इससे ज्यादा झूठी बात कभी नहीं कही गई। सच्चाई उलटी है। सच्चाई यह है कि उसके घर के लोग तो उसके होंगे ही, इस जमीन पर कोई न रह जाएगा जो उसके घर का बाहर का हो। सच्चाई यह है कि उसके संबंध तो जिनसे हैं उनसे होंगे ही, इस जगत में कोई न रह जाएगा जिससे उसके संबंध न रह जाएं। उसका परिवार मिटेगा नहीं, बड़ा हो जाएगा; उसका प्रेम समाप्त नहीं होगा, विराट हो जाएगा। उसका छोटा सा घर नष्ट नहीं होगा, बल्कि उसके घर की सीमाएं बड़ी होती चली जाएंगी और जमीन पर कोई कोना ऐसा न होगा जो उसे अपना घर जैसा मालूम न पड़े। यह बात झूठी है कि वह अपने घर से छोड़ देगा। सच बात यह है कि पूरी जमीन उसका घर हो जाएगी। यह बात गलत है कि वह अपने परिवार का शत्रु हो जाएगा। सच्ची बात यह है कि इस जमीन पर सब कुछ उसका परिवार हो जाएगा। उसका प्रेम विराट होगा, क्षुद्र नहीं।

और निश्चित ही जब इतने विराट प्रेम का जन्म होगा, तो जिस प्रेम को हम जानते हैं उसमें एक क्रांति हो जाएगी, उसमें एक परिवर्तन हो जाएगा। हमारे प्रेम में तो घृणा भी मौजूद होती है। जिस पत्नी को हम प्रेम करते हैं, उसकी हम हत्या भी कर सकते हैं। जिस मित्र को हम कहते हैं कि मैं तुम्हारे लिए प्राण दे दूंगा, जरा सी बात बिगड़ जाए और हम उसके प्राण लेने को तैयार हो सकते हैं। हमारा प्रेम अपने भीतर घृणा को छिपाए हुए है। यह प्रेम झूठा है। क्योंकि जिस प्रेम के भीतर घृणा बैठी हो, उस प्रेम का मूल्य कितना? हम जिसे प्रेम करते हैं उसी को घृणा भी करते हैं। जरा सी बात बिगड़ जाए, हमारी इच्छाओं के विपरीत हो जाए बात, हमारी आकांक्षा से भिन्न हो जाए, हमारा प्रेम समाप्त और हमारी घृणा बाहर निकल आएगी। जब दो मित्र शत्रु हो जाते हैं, तो उन जैसा शत्रु और कोई भी नहीं होता। और जब दो भाई लड़ने लगते हैं, तो उन जैसा लड़ने वाला भी खोजना कठिन है। क्यों? क्या बात है? हमारे प्रेम और हमारी मित्रता के पीछे हमारी घृणा मौजूद है। जब कोई व्यक्ति शांत होता है, तो प्रेम नष्ट नहीं होता, उसके भीतर से घृणा समाप्त हो जाती है, उसके पास शुद्ध प्रेम बच जाता है। इसलिए उसके प्रेम में वह वायलेंस, वह हिंसा नहीं होती, जो हमारे प्रेम में है। लेकिन उसके प्रेम में एक अपार्थिव प्रकाश आना शुरू हो जाता है, एक दिव्य ज्योति आनी शुरू हो जाती है।
निश्चित ही जिस प्रेम में घृणा है, वह सीमित होता है, वह किसी से बंधा होता है, लेकिन जिस प्रेम में कोई घृणा नहीं रह जाती, वह असीम हो जाता है, उसका बंधन नहीं रह जाता। वह प्रेम किसी को पजेस नहीं करता, वह किसी का मालिक नहीं बनता, वह किसी को डॉमिनेट नहीं करता, वह किसी का अधिकार नहीं ले लेता। हमारा प्रेम तो मालकियत है। मैं अपनी पत्नी को कहूंगा कि मैं तुम्हारा मालिक हूं। पति हमेशा से पत्नियों से यह कहते रहे हैं और पत्नी भी अपने मन में जानती है कि वह भी मालकिन है। जो यह जानता है कि जिसे मैं प्रेम करता हूं उसका मैं मालिक हूं, वह ठीक से समझ ले, उसने कभी प्रेम को जाना भी नहीं, उसने कभी प्रेम को किया भी नहीं।
प्रेम कभी किसी का मालिक हो सकता है? मालिक तो हम उसके होना चाहते हैं जिससे हमें डर होता है, भय होता है। हम उस पर कब्जा कर लेना चाहते हैं, ताकि उससे भय न रह जाए, उससे डर न रह जाए। मालिक तो हम उसके होना चाहते हैं जिससे हमें कोई प्रेम नहीं होता। मालिक तो हम वस्तुओं के होना चाहते हैं। व्यक्तियों का कभी कोई मालिक हो सकता है? आत्माओं का कभी कोई मालिक हो सकता है? जो किसी को प्रेम करता है वह कभी उसका मालिक न होना चाहेगा। मालकियत घृणा का सबूत है, प्रेम का नहीं। तो हमारा यह जो प्रेम है जो मालिक बन जाता है, और जिसकी मालकियत जरा भी डांवाडोल हो जाए तो हत्या करने को उतारू हो जाएगा। यह प्रेम जरूर शांत व्यक्ति में नहीं रह जाएगा। शांत व्यक्ति के प्रेम में कोई पजेशन, कोई मालकियत, कोई घृणा नहीं होगी। इसलिए शांत व्यक्ति का प्रेम असीम होता चला जाएगा। वह एक को पार करके धीरे-धीरे अनेक पर पहुंच जाएगा; वह एक की सीमा से मुक्त होकर धीरे-धीरे सबमें प्रवेश पा जाएगा। ऐसे ही प्रेम को मैं प्रार्थना कहता हूं, जो एक को पार कर लेता है और सब तक पहुंच जाता है।
मंदिरों में कही जाने वाली प्रार्थनाएं प्रार्थनाएं नहीं हैं, थोथे शब्द हैं। सच्चा प्रार्थना से भरा हुआ हृदय तो वह है जिसका प्रेम अनंत और असीम तक पहुंचने लगा हो, जिसके प्रेम की लहरें दूर-दूर फैल रही हों, और जिसका प्रेम किसी सीमा को न मानता हो, और जिसका प्रेम केवल देना जानता हो, मांगना न जानता हो।
प्रेम तो नष्ट नहीं होगा, लेकिन प्रेम परिवर्तित हो जाएगा; परिवार तो नहीं मिटेगा, लेकिन परिवार बहुत बड़ा हो जाएगा; संसार तो नहीं बिगड़ेगा, लेकिन संसार एक अभूतपूर्व रूप से परिवर्तित होकर स्वर्ग बन जाएगा। इसलिए भयभीत न हों। इस बात से भयभीत न हों कि संसार बिगड़ जाएगा।
बड़े मजे की बातें हैं, क्या है आपके संसार में? कौन सी शांति है? कौन
सा आनंद है? कौन सा प्रेम है? जिसके खो जाने से हम भयभीत हो जाते हैं कि कहीं हम शांत हो गए तो सब खो न जाए। क्या है आपके पास जो खो जाएगा?

हमारी हालत करीब-करीब उस भिखमंगे जैसी है जो एक राजधानी के किनारे रात भर जागा रहता था। पुराने दिनों की घटना है। उस गांव का बादशाह रोज घोड़े पर सवार होकर रात को आधी रात गांव की निरीक्षण को निकलता। वर्ष पर वर्ष बीत गए। सर्दी हो कि बरसात कि गर्मी हो, कि अंधेरी रात हो कि उजाली रात हो, वह भिखारी गांव के बाहर निरंतर खड़ा हुआ जागता रहता। आखिर उस बादशाह से न रहा गया। उसने एक दिन अपने घोड़े को रोका और पूछा, मेरे मित्र, किस चीज का पहरा देते हो रात भर? उस भिखारी ने कहाः मेरा भी सामान है, कोई उठा कर न ले जाए। उसके पास एक भिक्षा-पात्र था, एक डंडा था, एक झोली थी। वह रात भर जाग कर पहरा देता था कि कहीं कोई उसके इस सामान को चुरा कर न ले जाए। तो उसने राजा से कहा कि क्या आप सोचते हैं मैं सो जाऊं और कोई मेरा सामान ले जाए? तो मैं दिन को सो लेता हूं, जब रास्ते चलते होते हैं, तब कोई डर नहीं होता। रात मैं जागता हूं कि कहीं कोई मेरा सामान न ले जाए।
राजा बहुत चिंतित हुआ। वह लौटा और उसने अपने राजगुरु को जाकर कहा कि मैंने बड़ी हैरानी की घटना देखी। एक भिखमंगे ने मुझसे यह कहा है कि वह रात भर इसलिए जागता है कि कहीं उसका कोई सामान न ले जाए। और सामान उसके पास एक भिक्षा-पात्र, एक डंडा और एक झोली से ज्यादा नहीं है। उसके राजगुरु ने कहाः अक्सर ऐसा होता है, जिनके पास कुछ भी नहीं होता, वे हमेशा डरे रहते हैं कि उनकी चोरी न हो जाए। अक्सर ऐसा होता है, जिनके पास कुछ भी नहीं है, वे भयभीत रहते हैं, कहीं वह खो न जाए।
हमारे पास क्या है जिससे हम भयभीत हैं? क्या है हमारे संसार में जिसके
खो जाने से हम डरे हुए हैं? क्या है? कौन सा आलोक हमारे प्राणों को आलोकित कर गया है? कौन सा जीवन हमने जीया और जान लिया है? स्मरण आती है कोई घड़ी जीवन में लौट कर देखने पर जिसे हम कहें कि यह मेरी संपदा है इसे मैं सम्हालना चाहूं? कोई क्षण याद आते हैं जो ऐसे लगते हों जिनको बचाना जरूरी है? और अगर कल कोई परमात्मा आपसे आकर कहे कि जो जिंदगी आप जीए थे, मैं दुबारा उसी जिंदगी को जीने का हक देता हूं, हममें से कितने लोग उसी जिंदगी को दुबारा जीने को राजी होंगे? कौन राजी होगा इस बात के लिए कि जो जिंदगी उसने जी, ठीक वैसी जिंदगी दुबारा जीने को अगर मौका मिल जाए। इनकार कर देगा कि ऐसी जिंदगी मुझे नहीं जीनी। कुछ भी तो नहीं जाना, कुछ भी तो नहीं पाया, सिवाय दुख और पीड़ा के। सिवाय क्रोध और अशांति के क्या जाना है? सिवाय बेचैनी और परेशानी के कौन सी चीज से पहचान हो गई? कुछ भी नहीं, लेकिन भय है कि कहीं वह खो न जाए?
मत भयभीत होइए। शांत होने के साथ ही वह संपदा मिलनी शुरू होती है, जिसे खोने के लिए कोई भयभीत हो, तो उचित भी माना जा सकता है। लेकिन बड़े आश्चर्यों का आश्चर्य यह है कि शांति से जो संपदा मिलती है, उसके खो जाने का कोई मार्ग नहीं है। उसे न कोई छीन सकता है, न कोई नष्ट कर सकता है, उसे न कोई मिटा सकता है, न कोई जला सकता है। शांत होने से जो संपदा मिलती है, हो सकता है कि कोई उसके खो जाने के लिए भयभीत भी हो, क्योंकि वह संपदा है, लेकिन उसके खो जाने का कोई भय नहीं। क्योंकि वह प्राणों की प्राण है। वह हमारे बाहर नहीं है कि भटक जाए, खो जाए। वह तो हम स्वयं हैं, वह तो हमारा स्वरूप है।
उस स्वरूप की दिशा में शांत होने के संबंध में थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कल कहीं। स्मरण रखिए, कुछ खोएगा नहीं शांत होने से, क्योंकि अभी कुछ है ही नहीं पास में। हां, कुछ मिल जरूर जाएगा। लेकिन उसकी हमें कल्पना भी नहीं है कि वह क्या है जो मिल सकता है?

और एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि मैंने कहा कि शब्दों को दोहराएं नहीं। दोहराने, रिपीटीशन से तो मन जड़ हो जाता है। तो उन्होंने पूछा है कि हमारे मंत्र--सभी धर्मों के मंत्र हैं और शास्त्रों ने उनका अनुमोदन किया है। सैकड़ों वर्षों से कहा जाता रहा है, उनको दोहराओ, दोहराओ। और जितना ज्यादा दोहराओगे, जितना ज्यादा रिपीट करोगे, उतना ही ज्यादा भगवान के निकट पहुंच जाओगे। तो उस संबंध में मेरा क्या खयाल है?

पहली बात, शांति दो प्रकार की होती है। एक तो शांति वह होती है, जो आदमी को नींद में मिलती है, जब वह रात सो जाता है और सुबह उठ कर कहता है, मैं बहुत गहरी नींद में सोया, बड़ा अच्छा लगा, बड़ा मन शांत है। बेहोशी की शांति है! पैर में दर्द है और डाक्टर एक इंजेक्शन लगा दे, जिससे स्नायु सो जाएं, तो एक तरह की शांति मिलती है, दर्द का पता होना बंद हो जाता है। जड़ता की शांति है! पैर जड़ हो गया, उसकी संवेदनशीलता कम हो गई, दर्द का अनुभव नहीं होता। जो आदमी जितना ज्यादा संवेदनशील है, जितना सेंसिटिव है, उतना ही पीड़ाओं को अनुभव करता है। जो आदमी जितना जड़ है, जितना ईडियट है, उतना ही कम पीड़ाओं को अनुभव करता है। क्योंकि पीड़ा के अनुभव के लिए संवेदनशीलता चाहिए। तो जितना संवेदनशील व्यक्ति होगा, उतनी पीड़ा अनुभव करेगा; जितना कम संवेदनशील होगा, उतनी कम पीड़ा अनुभव करेगा।
जमीन पर जो सर्वाधिक बुद्धिमान, सर्वाधिक संवेदनशील हृदय हैं, वे सर्वाधिक दुख पाते हैं। जमीन पर जो बहुत जड़बुद्धि हैं, उन्हें कोई भी दुख व्याप्त नहीं होता, उन्हें पता ही नहीं चलता, उन्हें खयाल भी नहीं होता कि यह दुख है। क्योंकि दुख के लिए बोध चाहिए, अवेयरनेस चाहिए, होश चाहिए दुख के अनुभव के लिए।
तो शांति दो प्रकार की हो सकती है। मन जड़ हो जाए, तो भी ऐसा लगेगा कि शांत हो गए। नशा कर लें, शराब पी लें, तो भी शांति मालूम पड़ेगी। लेकिन वह शांति झूठी है। उससे दुख मिटता नहीं, केवल दुख को अनुभव करने वाला यंत्र जड़ हो जाता है। दुख को अनुभव करने वाला यंत्र जड़ हो जाए इससे दुख नहीं मिटता, इससे केवल दुख भूल जाता है। कितनी देर भुलाइएगा?
भुलाने के कई रास्ते हैं। शारीरिक रास्ते हैं और मानसिक रास्ते हैं। शारीरिक रास्ते तो ये हैं--एक आदमी शराब पी लेता है, एक आदमी नाचने लगता है, नाचने में पागल हो जाता है। एक आदमी मैस्कलीन का इंजेक्शन लगवा लेता है, या और नये-नये नये डग्स हैं, एल एस डी है और जमाने भर के ड्रग्स हैं, उनको ले लेता है। कुछ घंटों के लिए उसकी सारी, जो दुख को अनुभव की क्षमता है, वह विलीन हो जाती है। फिर वापस लौट आएगी। दुनिया में लोग शराब व्यर्थ ही नहीं पीते रहे हैं। सारी दुनिया पर नये-नये ढंग के इंटाक्सिकेंट ऐसे ही ईजाद नहीं होते रहे हैं। कोई मनुष्य की बहुत गहरी जरूरत है, जिसको वे पूरा करते रहे हैं। वह जरूरत यह है, दुख का पता न चले। तो जड़ता, कोई भी तरह की जड़ता और बेहोशी आ जाए, दुख का पता नहीं चलेगा।
जो लोग शराब नहीं पीना चाहते, इंजेक्शन नहीं लेना चाहते, उनके लिए और
भी सरल रास्ते हैं। वे किसी शब्द को और मंत्र को निरंतर उच्चारण करें, रिपीट करें, उससे भी मन जड़ हो जाता है। कोई भी चीज की बार-बार पुनरुक्ति करने से चित्त पर बोर्डम पैदा होती है, डलनेस पैदा होती है। अगर मैं यहां बैठ कर बोल रहा हूं और एक ही बात घंटे भर तक बोले चला जाऊं, तो आपके मन पर क्या प्रतिक्रिया होगी? आपमें से बहुत से लोग तो सो जाएंगे। जैसा अधिकतर लोग सभाओं में सोते हैं--खास कर धार्मिक सभाओं में। क्योंकि वहां वे ही बातें दोहराई जाती हैं जो हजारों बार दोहराई गई हैं। तो लोग सो जाते हैं। बोलने वाला सोचता होगा कि यह सोने वालों का कसूर है। यह बोलने वाले का कसूर है। वह इस तरह की बातें बोल रहा है, जिनसे बोर्डम पैदा होती है। रिपीट कर रहा है कुछ बातों को, उससे लोग ऊब जाते हैं, ऊब से नींद पैदा होती है। उसमें जो बहुत सचेतन लोग होंगे, वे उठ कर चले जाएंगे, क्योंकि यह तो जड़ता की बात हो गई। और इसीलिए जवान आदमी धार्मिक सभाओं में दिखाई नहीं पड़ते। अभी उन्हें जिंदगी है। बूढ़े आदमी दिखाई पड़ते हैं। बूढ़े आदमी मौत की तरफ सरक रहे हैं, वे जड़ता की तरफ सरक रहे हैं। उनको कोई भी जड़ता प्रीतिकर लगती है। जवान को जड़ता मुश्किल मालूम पड़ती है कि वहां बैठा रहे। और अगर बिल्कुल छोटे बच्चे बिठाल दिए गए हों, तो वे तो बिल्कुल ही नहीं बैठेंगे, अभी वे बहुत जीवंत हैं। अभी वे जड़ होने को राजी नहीं हैं। अभी जिंदगी उनमें बड़ा प्रवाह ले रही है; अभी जिंदगी उनमें खड़ी हो रही है, तो उन्हें जड़ता की कोई बात अपील नहीं करेगी। इसीलिए तो सारी दुनिया में धर्म से बच्चों और जवानों का संबंध टूट गया, सिर्फ बूढ़ों का संबंध रह गया।

यह इस बात की सूचना है कि जिस धर्म को हम बार-बार दोहरा रहे हैं, वह किसी न किसी रूप में जड़ता का पक्षपाती होगा। अगर वह जीवन का पक्षपाती होता, तो बच्चे और जवान उसमें निश्चित ही उत्सुक होते। लेकिन यह जो रिपीटीशन है, यह जो बार-बार दोहराना है किन्हीं बातों का, यह एक तरह की राहत, एक तरह की शांति लाता है। और वह शांति इस बात की है--अगर आप राम-राम, राम-राम घंटे भर तक कहते रहें, मन ऊब जाएगा जो कि मन का स्वभाव है। मन जागता है नये से, नई चीज हो तो जागता है। पुरानी-पुरानी बात तो मन को जागने का कोई कारण नहीं रह जाता, वह सो जाता है। उससे जो तंद्रा पैदा होती है, उसको लोग शांति समझते हैं। उससे जो निद्रा पैदा होती है, जिसको योग-निद्रा कहते हैं, वह शांति नहीं है। वह केवल सो जाना है। वह ऑटो-हिप्नोसिस है। वह आत्म-सम्मोहन है। वह एक तरह की नींद है, जो हम ईजाद कर रहे हैं।
अगर आपको नींद न आती हो, तो राम-राम का जप बड़ा लाभ पहुंचा सकता है। कोई
भी मंत्र का जप लाभ पहुंचा सकता है। लेकिन नींद आ जाना सत्य को जान लेना नहीं है। नींद आ जाना शांति को पा लेना नहीं है। लिविंग साइलेंस बड़ी और बात है, डेड साइलेंस बड़ी और बात है। मरघट पर शांति होती है। वह भी एक शांति है। लेकिन हम यहां इतने लोग बैठे हैं और शांत हैं, यह बिल्कुल दूसरी शांति है। यह मरघट की शांति नहीं है। यहां इतने जिंदा लोग बैठे हैं, जीवंत लोग बैठे हैं और यहां एक शांति है। यह शांति बात और है।
बुद्ध का वैशाली के पास आना हुआ। दस हजार भिक्षु उनके साथ थे। गांव के बाहर उन्होंने डेरा डाला। वैशाली का नरेश भी उत्सुक हुआ देखने जाने को कि बुद्ध आए हैं। दस हजार भिक्षु उनके साथ आए हैं। कैसा यह आदमी है? जिसने राज्य छोड़ दिया, जो सम्राट से सड़क पर भिखारी हो गया--कैसा यह आदमी है? तो उस नरेश ने भी अपने मंत्रियों को कहा कि मुझे दिखाने ले चलो, मैं चलना चाहूंगा। एक संध्या वह वैशाली के बाहर गया। उसने अपने मंत्रियों से पूछा, कितनी दूर है? रथ पास आ गया था, वृक्षों का घना झुरमुट था। मंत्रियों ने कहाः इन्हीं वृक्षों के उस पार, बस हम निकट ही हैं। दस कदम के बाद वह नरेश संदेह से भर गया, उसने कहाः तुम कहते थे, दस हजार भिक्षु उनके साथ हैं और यहां तो बिल्कुल सन्नाटा है? उसने अपनी तलवार निकाल ली। उसने कहाः मालूम होता है कोई धोखा दिया गया है मुझे। तुम मुझे यहां कहां ले आए हो? दस हजार लोग जहां हों, वहां दस कदम के फासले पर इतना सन्नाटा!
उसके मंत्रियों ने कहाः आप परेशान न हों। उन लोगों को आप नहीं जानते।
वे जीते जी शांत हो गए हैं। वहां कोई आवाज नहीं है। वहां कोई बातचीत नहीं हो रही।
नरेश गया, डरा हुआ, तलवार नंगी हाथ में लिए हुए। डर था उसे कि पता नहीं क्या खतरा हो जाए? दस हजार लोग जहां हों, वहां इतनी शांति कल्पनातीत थी। वहां जाकर उसने देखा, वहां तो पूरी बस्ती है दस हजार लोगों की। उसने बुद्ध से जाकर पूछा, बड़े अजीब मालूम होते हैं ये लोग। ये जिंदा हैं या मुर्दा? ये न कोई बात कर रहे हैं, न कोई चीत; न यहां कोई शोरगुल, न कोई आवाज। दस हजार लोग चुपचाप बैठे हैं!
बुद्ध ने कहाः तुमने केवल मुर्दा शांति को ही जाना है इसलिए तुम्हें
शक पैदा होता है, कहीं ये लोग मुर्दा तो नहीं? तुमने केवल मरघटों पर जो शांति होती है, उसको जाना है। हम उस शांति की खोज में हैं, जो जिंदा आदमी को मिलती है, जीवित मन को मिलती है।
मैं उस शांति की बात कर रहा हूं, जो मन को मुर्दा न कर दे, डेड न कर दे,
मन को डल न कर दे, शिथिल न कर दे, बल्कि मन को इतना सचेतना से भर दे, इतनी अवेयरनेस से, इतने होश से, इतने जीवंत शक्ति से कि वह जीवंत शक्ति के कारण शांत हो जाए। शक्ति की क्षीणता के कारण नहीं, सो जाने के कारण नहीं, बल्कि जागरण के कारण शांत हो जाए।
तो जागरण से जो शांति आती है, वह तो जीवित है। उस जीवित शांति में तो जाना जा सकता है सत्य। क्योंकि सत्य जानने के लिए जाग्रत होना जरूरी है। नहीं तो जानेगा कौन? लेकिन मंत्रों, नाम-जप और इस तरह की बातों से जो शांति पैदा होती है, वह झूठी, निद्रा की शांति है, जीवन की शांति नहीं। उससे कुछ होने वाला नहीं है।

और ये जो मंत्र हैं, यह भी उन्होंने पूछा हैः इतने मंत्र हैं, इनकी शक्तियों का वर्णन है, इनसे यह हो सकता है, यह हो सकता है, यह हो सकता है। बड़ा एक षडयंत्र आदमी के साथ चलता रहा है, एक बड़ी कांस्प्रेसी चलती रही है। और वह षड्यंत्र यह है, जो मैं एक छोटी सी कहानी से आपको कहूं।
एक मस्जिद के बाहर एक मुल्ला सुबह खड़े होकर पत्थर फेंक रहा था। गांव
का राजा वहां से निकला, उसने उस मुल्ला को पूछा कि मेरे मित्र, ये पत्थर किसलिए फेंक रहे हो? उस मुल्ला ने कहाः ताकि शेर, चीते, जंगली जानवर यहां राजधानी में न आ सकें, इसलिए पत्थर फेंक रहा हूं। वह राजा बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि मैंने आज तक न तो यहां शेर देखे, न चीते देखे, तुम फिजूल पत्थर फेंक रहे हो। वह मुल्ला क्या बोला? वह बोला कि तुम्हें पता ही नहीं है राजन, मेरे पत्थर फेंकने की वजह से ही तो शेर और चीते यहां नहीं आते हैं। तुम सोचते हो शेर-चीते नहीं हैं? और मेरे पत्थर फेंकने की वजह से वे नहीं आते हैं।
अभी कुछ समय पहले आठ ग्रह इकट्ठे हो गए थे और सारा मुल्क दीवाना हो गया सारी दुनिया को बचाने के लिए, और न मालूम किस-किस तरह की बेवकूफियां हमने कीं। और अगर कोई हमसे कहे कि देखो, कुछ तो हर्जा नहीं हुआ उन अष्टग्रह से। तो हम कहेंगे, तुम पागल हो। अरे, हमारे यज्ञ-हवन की वजह से कोई हर्जा नहीं हो पाया। नहीं तो हर्जा होता। वह तो हमने जो मंत्र उच्चार किए और हमने जो पवित्र अग्नियां जलाईं, उनकी वजह से सारी दुनिया बच गई। नहीं तो दुनिया डूब जाती। वह हमारे पत्थर फेंके इसलिए शेर-चीते नदारद हो गए। नहीं तो वे तो थे। अगर हमने यह नहीं किया होता तो दुनिया कभी भी डूब कर नष्ट हो गई होती, महाप्रलय हो गया होता।
ये सारे मंत्र उन भूत-प्रेतों को भगाते हैं, जो हैं ही नहीं। पहले हमें यह विश्वास दिला दिया जाता है कि भूत-प्रेत हैं। पहले हमें यह विश्वास दिला दिया जाता है कि ये-ये फियर, ये-ये घबड़ाहट हैं। जब हम उससे भयभीत हो जाते हैं, तो उसको दूर करने के लिए मंत्र बता दिया जाता है। निश्चित ही भय दूर हो जाएंगे उन मंत्रों से, क्योंकि भय थे ही नहीं। कहावत हैः फेथ कैन मूव माउंटेंस। कहावत हैः विश्वास पहाड़ों को हटा सकता है। लेकिन केवल ऐसे पहाड़ों को जो काल्पनिक हों। सच्चे पहाड़ों को आज तक किसी विश्वास ने न हटाया है और न हटा सकता है। हां, झूठे पहाड़ हटाए जा सकते हैं। और झूठे पहाड़ समझाए जा सकते हैं कि हैं। हम इतने नासमझ हैं कि हम हजारों झूठी बातों पर हजारों वर्ष तक विश्वास करते रहे हैं, और आज भी हमारी नासमझी का कोई अंत नहीं हुआ, आज भी हम विश्वास करते हैं। उनको हटाया जा सकता है, क्योंकि वे हैं ही नहीं। जो बीमारियां नहीं हैं, वे मंत्रों से दूर की जा सकती हैं। जिन सांपों में जहर ही नहीं होता, वे मंत्रों से उतर जाते हैं।
हिंदुस्तान में सत्तानबे प्रतिशत सांपों में कोई जहर नहीं होता। केवल तीन प्रतिशत सांपों में जहर होता है। सौ आदमियों को सांप काटे, सत्तानबे के मरने का कोई भी कारण नहीं है, सिवाय इसके कि वे भय से न मर जाएं। तो सत्तानबे मौकों पर तो मंत्र काम कर ही जाएगा। यह हो सकता था कि मंत्र न होता तो वे आदमी मर जाते, क्योंकि दुनिया में बीमारी से कम लोग मरते हैं, भय से ज्यादा लोग मरते हैं। सांप ने काट खाया, यह बात मारने वाली हो जाती है, चाहे सांप में कोई जहर हो या न हो। हजारों सांप के काटे हुए लोग मर जाते हैं केवल इसलिए कि उनको सांप ने काट खाया। उस सांप में कोई जहर ही नहीं होता। सौ आदमियों को सांप काटे, सत्तानबे के मरने का कोई कारण नहीं है, लेकिन मर सकते हैं। मंत्र ऐसे आदमियों को बचा सकता है, क्योंकि जो जहर नहीं था वह उतर सकता है। और भय हमें बहुत जोर से पकड़ते हैं।
एक कहानी मैंने सुनी है। एक राजधानी के बाहर एक फकीर रहता था। एक दिन सुबह-सुबह उसने देखा, एक बहुत बड़ी काली छाया नगर की तरफ भागी चली आ रही है। उसने उस काली छाया से पूछा, तुम कौन हो?
उस काली छाया ने कहाः मैं प्लेग हूं।
फकीर ने पूछाः किसलिए जा रही हो नगर में?
उसने कहा कि मुझे एक हजार लोगों के प्राण लेने हैं।

वह छाया नगर में चली गई। तीन महीने बीत गए। उस फकीर ने उस जगह को न छोड़ा, क्योंकि तीन महीने में कोई दस हजार आदमी मर गए उस गांव में। उसने कहा कि लौटते हुए प्लेग से पूछ लूं कि मुझसे झूठ बोलने की क्या वजह थी? तीन महीने बाद वह प्लेग की काली छाया वापस लौटी, तो उस फकीर ने टोका और उसने कहा कि हद हो गई, मुझसे झूठ बोलने का क्या कारण था? तुमने तो कहा था एक हजार लोगों के प्राण लेने हैं और दस हजार लोग मर गए?
उस प्लेग ने कहाः मैंने तो एक ही हजार मारे, बाकी भय से मर गए। मेरा उसमें कोई कसूर नहीं। बाकी नौ हजार आदमी अपने आप घबड़ाहट से मर गए, उनको मैंने नहीं मारा।
इन नौ हजार आदमियों पर मंत्रों का उपयोग हो सकता था, ये बच सकते थे। इनको कोई बीमारी ही नहीं थी।
ये जो सारे मंत्र हैं, जो हमें शक्तिशाली मालूम होते हैं। मंत्र शक्तिशाली नहीं हैं, हमारा मन कमजोर है, भयभीत है। इसलिए अगर मन को किसी भी बात से बल दिया जा सके, ताकत दी जा सके, तो फर्क पड़ जाता है। और अगर हमको किसी दिन यह बात ठीक-ठीक समझ में आ गई, तो मंत्रों को बीच में लेने की कोई जरूरत नहीं है। हम अपने आत्मबल को, अपने मन के बल को बिना किसी मंत्र के सहारे के नहीं खड़ा कर सकते हैं। मंत्र से उसका कोई संबंध नहीं है। संबंध है मेरे भीतर, मेरे अपने बल का। अगर वह है, अगर मेरा भय छूट जाए, अगर जीवन में मेरी चिंता छूट जाए, अगर जीवन में मेरी अशांति छूट जाए, तो इतनी बड़ी शक्ति का उदय होगा, किसी मंत्र की कोई जरूरत नहीं है। यह कमजोर आदमी का शोषण है। कमजोर है आदमी बहुत। और धर्मों ने, पुरोहितों ने उसे मजबूत तो नहीं बनाया, उलटे और कमजोर किया है, उलटे और भयभीत किया है। उसे ऐसे भय दे दिए हैं, जिनकी कोई जगह, कोई गुंजाइश नहीं है, जिनकी सच्चाई में कहीं कोई असलियत नहीं है। जमीन के भय हैं, नरक के भय हैं, स्वर्ग के भय हैं, और न मालूम कितने-कितने काल्पनिक भय हैं। और उन काल्पनिक भय के भीतर घिरा हुआ आदमी है। इस आदमी को बल चाहिए।
इसको कोई भी नासमझी पकड़ा दें। अगर इसे ऐसा लगे कि हां, मेरी थोड़ी हिम्मत बढ़ती है, तो हिम्मत तो अंधेरे में आप जा रहे हों, अगर जोर से फिल्म का गाना भी गाने लगें, तो बढ़ जाती है। अगर अंधेरी गली से निकल रहे हों और सीटी बजाने लगें तो भी हिम्मत बढ़ जाती है। कुछ भी करने लगें तो हिम्मत बढ़ जाती है, क्योंकि करने में आप भय को भूल जाते हैं। क्योंकि मन एक ही साथ दो काम नहीं कर सकता। या तो फिल्मी गाना गा सकता है या भयभीत हो सकता है। अगर अंधेरी गली से निकल रहे हों और जोर से फिल्म का गाना गाने लगें, तो मन फिल्म का गाना गाने लगा, भयभीत कौन होगा? उतनी देर के लिए भय बंद हो जाएगा। तो चाहे फिल्मी गाना गा लें, चाहे राम-राम जप लें, चाहे नमोकार जप लें, चाहे कुछ और कर लें। लेकिन उससे कोई जीवन में क्रांति नहीं होती और न परिवर्तन होता है, बल्कि जो कौमें और जो लोग इस तरह के झूठे, इस तरह के झूठे विज्ञानों में, इस तरह की शूडो साइंसिस में फंस जाते हैं, उन मुल्कों में असली विज्ञान का जन्म नहीं हो पाता।
हमारे मुल्क का दुर्भाग्य यही है। यही मंत्र, यही थोथे विश्वास और इन
पर श्रद्धा। हमारे मुल्क में साइंस पैदा नहीं हो सकी। हम सारी जमीन पर पिछड़ गए हजारों साल के लिए। शायद अब हम किसी कौम के साथ कदम मिला कर नहीं चल सकेंगे। किसके ऊपर जिम्मा है? उन लोगों के ऊपर जो इन थोथी बातों को प्रचारित करते रहे, लोगों को समझाते रहे। इसकी वजह परिणाम यह हुआ कि जिंदगी के दुख को मिटाने का जो कॉ.जेलिटी थी, जो कारण था असली, वह तो हमने नहीं खोजा। हमने कहाः मंत्र पढ़ लो, राम-राम जप लो, मामला सब ठीक हो जाएगा। तो जिंदगी के दुख मिटाने के जो असली कारण थे, वे हमने नहीं खोजे। हमने ऊपरी तरकीबें खोजीं। न जीवन और पदार्थ के संबंध में सत्यों को खोजा--न उसकी ताकत बढ़ी, न उसकी समृद्धि बढ़ी, न उसका आत्मबल बढ़ा। सब तरह से हम दीन-हीन हो गए। और उस दीन-हीन हो जाने के पीछे सबसे बड़ा कारण, हमारे ये थोथे मंत्र, ये थोथे खयाल कि हम इन बातों को करके सब कुछ कर लेंगे।
सोमनाथ पर हमला हुआ। सोमनाथ के हमले के वक्त सारे हिंदुस्तान से बहादुरों ने यह खबर भेजी कि मंदिर की रक्षा के लिए हम आ जाएं? तो मंदिर के

गर्व से भरे हुए पुजारियों ने कहाः तुम्हारी जरूरत भगवान की रक्षा के लिए! भगवान अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे? भगवान सबके रक्षक हैं, तुम्हारी क्या जरूरत है? बात तो ठीक थी। भगवान, जो सबके रक्षक हैं, उनके लिए कोई तलवार की रक्षा की जरूरत है? मान गए वे लोग। तलवार लिए हुए सिपाही खड़े थे, लेकिन वे लड़े नहीं। जिसने हमला किया था, वह आदमी भीतर घुस गया। और पांच सौ पुजारी थे उस मंदिर में और वे अपने मंत्रों का जाप कर रहे थे और प्रार्थनाएं कर रहे थे। और गजनी ने मूर्ति पर चोट की और मूर्ति टुकड़े हो-हो कर गिर गई और उनके सारे मंत्र रखे रह गए और सारी प्रार्थनाएं रखी रह गईं। और तब उन पुजारियों ने क्या कहा? जब उन्होंने देखा कि मंत्र फिजूल हो गए, सब व्यर्थ हो गया, मूर्ति तोड़ दी गई, तो उन्होंने एक नई बात ईजाद की। उन्होंने कहा कि गजनी शिव का अवतार मालूम होता है। नहीं तो यह कैसे हो सकता है? और हम उन मूढ़ों में से हैं कि हमने पहली बात भी मान ली और दूसरी बात भी मान ली कि गजनी जो है भगवान शिव का अवतार होना चाहिए, तभी तो, तभी तो सारी बात हो गई।
यह जो हम इस भांति का जो चिंतन करते रहे हैं, यह चिंतन नहीं है, यह जड़ता है। और इसका परिणाम यह हुआ कि हम साइंस को जन्म नहीं दे पाए; हम खोज नहीं कर पाए। दूसरी कौमों के लोग, जो सयता और विचार के रास्ते पर हमसे बहुत पीछे चले, बहुत पीछे; वे आज चांद-तारों पर पहुंच रहे हैं। उन्होंने पदार्थ का अणु तोड़ लिया। वे आज आत्मा और मन की तलाश में भी बहुत गहरे जा रहे हैं। और हम, जिन्होंने यात्रा बहुत पहले शुरू की थी, आज जमीन पर सबसे पीछे खड़े हैं। कौन है जिम्मेवार? वे ही लोग, जो आज भी मंत्र और हवन की बातें कर रहे हैं। जीवन बातचीत करने से हल नहीं होता और ऊपरी इलाज करने से चिकित्साएं नहीं होतीं। जीवन में कारण खोजने पड़ते हैं। कारण की खोज साइंस है और बिना कारण को खोजे शब्दों को दोहराने की आस्था, सुपरस्टीशन है, अंधविश्वास है। मैं आपसे निवेदन करता हूं, कोई मूल्य इनका बहुत नहीं है। और जब तक हम
यह बात स्पष्ट रूप से न समझ लेंगे और हमारे मुल्क की नई पीढ़ी इस जंजाल से नहीं छूट जाएगी, तब तक हम अपने मुल्क में सत्य के अनुसंधान में न तो पदार्थ को खोज सकेंगे और न परमात्मा को।
मंत्र न तो पदार्थ की खोज में अर्थपूर्ण है और न परमात्मा की खोज में। दोहराने वाली बातें और कोरे शब्दों को दोहराने वाली बातें ज्यादा से ज्यादा थोड़ी सी हिम्मत दे सकती हैं; लेकिन उनसे कोई जीवन में क्रांति नहीं होती। और जितने जल्दी हम इस बात को समझ लें, उतना अच्छा है। नहीं तो शायद हमारे दुर्भाग्य के मिटाने के रास्ते भी बंद हो जाएंगे; समय भी खो जाएगा और हम अपने दुर्भाग्य को पोंछने के सारे उपाय अपने हाथ से ही तोड़ देंगे। लेकिन हम आज भी यही किए चले जा रहे हैं।
आज भी पानी नहीं गिरता, तो हम मंत्र का सहारा लेते हैं। पांच हजार साल
से हम यही करते रहे हैं। पांच हजार साल से हम यही करते रहे हैं कि जो हमसे न बन सके उसमें हम मंत्र का सहारा ले लेते हैं। बीमारी हो, तो मंत्र; पानी न गिरे, तो मंत्र; आदमी मरता हो, तो मंत्र; अनाज पैदा न हो, तो मंत्र। मंत्रों का कुल जमा परिणाम यह हुआ, जो हम आज हैं! और इसका फल यह हुआ कि हम मंत्रों में खोए रहे और अगर हम कारण खोजने में इतनी ताकत लगाते, तो कोई वजह न थी कि आकाश से पानी क्यों न गिर सके! कोई वजह न थी कि जमीन के भीतर से पानी क्यों न निकाला जा सके! जमीन के भीतर इतना पानी है कि अगर पांच सौ वर्षों तक भी बिल्कुल वर्षा न हो, तो भी पानी की कोई कमी नहीं है। लेकिन हम उसे निकालने में समर्थ नहीं हो सके। हम बैठे रहे, मंत्र पढ़ते रहे।
बिहार में हर वर्ष, आए वर्ष अकाल पड़ता है। मंत्र वहां बहुत पढ़े जाते हैं। मुल्क भर से भीख मांगी जाती है। अब तो हम दुनिया भर में भिखारी की तरह जाहिर हो गए। हर जगह हाथ फैला कर खड़े हो जाते हैं। मंत्र घर में पढ़ते हैं, भीख जमाने भर में मांगते हैं। लेकिन बिहार में वह किसान हाथ पर हाथ रखे बैठा रहता है, जमीन में कुआं भी नहीं खोदता। बिहार के खेतों में कुएं नहीं हैं। जहां निरंतर अकाल पड़ रहा है, वहां हर वर्ष यज्ञ, महायज्ञ और न मालूम क्या-क्या बेवकूफियां हम करते हैं लेकिन कुआं खोदने की हम कोई फिक्र नहीं करते। कुआं हम क्यों खोदें? हम तो मंत्रों के धनी हैं और मंत्र हमारे पास

हैं, तो सब पानी भी गिरेगा और फसलें भी उगेंगी और न मालूम हम क्या-क्या कर लेंगे। इस भ्रम में, इस इल्युजन में हमने बहुत गंवाया है।
वक्त आ गया है कि यह भ्रम टूट जाना चाहिए। नहीं तो मुल्क की रीढ़ हमेशा
के लिए टूट जाएगी। इस कौम का बहुत भविष्य नहीं है। अगर हम इन्हीं पुरानी पिटी-पिटाई बातों को आगे भी दोहराते जाते हैं, तो इस कौम के आगे आने वाले दिन अच्छे नहीं हो सकते। हम एक भिखमंगे में परिवर्तित हो गए हैं। और मंत्रों की कृपा है और हमारे पुरोहितों की और हमारे पंडितों की। जरूर मंत्र उपयोगी हैं पंडितों और पुरोहितों के लिए, आपके लिए नहीं। उनका धंधा है, उनका व्यवसाय है, उनकी आजीविका है। वे उससे जी रहे हैं। और अगर ये बंद हो जाएंगी बातें और लोगों का खयाल इनसे हट जाएगा, तो उनकी आजीविका जरूर टूट जाएगी। इसका तो जरूर मन में दुख होता है कि उनकी आजीविका टूट जाएगी, लेकिन अब यह आजीविका तोड़नी पड़ेगी। अब उनकी आजीविका चलेगी, तो इस पूरे मुल्क का जीवन टूट जाएगा।
अब दो बातों में से कुछ न कुछ निर्णय करना होगा कि या तो ये मंत्र पढ़ने वाले पंडित और पुरोहित जीएं और हम मर जाएं, और या फिर अब इनको अपना व्यवसाय बदलना होगा। अच्छा होगा कि मंत्र और यज्ञ करवाने की बजाय ये कुएं खोदने लगें, कुछ और करने लगें, और मुल्क को जीने दें और खड़ा होने दें। कोई उपयोग नहीं है। जरा भी कोई उपयोग नहीं है। और इस बात को बहुत स्पष्ट दो और दो चार की भांति आपसे कह रहा हूं, कोई उपयोग नहीं है। सोचें और देखें, मुल्क की कथा। क्या हुआ इनके उपयोग का परिणाम? हम कहां खड़े हैं?
लेकिन हम विचार भी नहीं करते। हम शायद सोचते होंगे, हम ठीक से मंत्र नहीं पढ़ पाए इसलिए सब गड़बड़ हो गई। शायद हम सोचते होंगे, यज्ञ-हवन कम कर पाए इसलिए यह गड़बड़ हो गई। या मंत्र तो पढ़े लेकिन उच्चारण ठीक नहीं हो पाया, संस्कृत में कुछ भूल हो गई इसलिए यह गड़बड़ हो गई। या शायद हमने पंडित-पुरोहितों की बात पूरी-पूरी तरह नहीं मानी इसलिए यह सब गड़बड़ हो गई। यह समझाने वाले लोग भी हैं और हममें से बहुत से लोग इसको समझने के लिए भी तैयार हैं। क्योंकि हजारों साल की दासता में जिस कौम का दिमाग पल गया हो, उसकी सोचने-समझने की शक्ति समाप्त हो जाती है। उसे सोच-विचार पैदा नहीं होता। उसकी आदत विश्वास करने की हो जाती है, विचार करने की नहीं होती। मैं आपसे निवेदन करूंगा, विश्वास बहुत किया जा चुका। विचार करिएगा या नहीं? बहुत हो चुका विश्वास। बिलीफ पर हम बहुत जी चुके। अब विचार करिएगा या नहीं? चहुंमुखी विचार की जरूरत है, सर्वांगीण विचार की जरूरत है। पदार्थ के संबंध में, जीवन के संबंध में, परमात्मा के संबंध में विवेक की जरूरत है, खोज की जरूरत है। अंधेपन की जरूरत नहीं है कि मान लें। मान लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। किसी बात को मानने की कोई जरूरत नहीं है। बहुत मान चुके और बहुत खो चुके। मुल्क बैंकक्रप्ट हो गया, दिवालिया हो गया, उसकी आत्मा नष्ट हो गई, उसके प्राण भटक गए, उसकी सारी दिशा खो गई, उसकी आंखें बंद हो गईं, लेकिन फिर भी, फिर भी हम दोहराए जा रहे हैं। हम दोहराए जा रहे हैं उन्हीं बातों को जो हमारे भटकाने का रास्ता बनी, हम आज भी कहे जा रहे हैं।
जरूरत आ गई है कि इस सारी थोथी परंपरा, इस सारी रूढ़ि, इस सारे अंधे चिंतन से देश मुक्त हो जाए। और मैं आपसे कहता हूं कि उस भांति होने से मुल्क अधार्मिक नहीं हो जाएगा। अधार्मिक अभी है। विश्वासी व्यक्ति अंधा होता है। अंधा आदमी कभी धार्मिक नहीं होता। धार्मिक तो बहुत खुली हुई आंखों वाला आदमी होता है। विचार अधर्म में नहीं ले जाता; विचार तो जितना तीव्र और गहरा और जितना प्रवेश करने वाला होता है, उतना ही ज्यादा धर्म में ले जाता है।
तो विचार की क्रांति अगर आए, तो इससे घबड़ाने की जरूरत नहीं कि अधार्मिक हो जाएंगे, लोग भटक जाएंगे। मैं आपसे कहता हूं, लोग भटके हुए हैं, अब और भटकने की कोई गुंजाइश नहीं है। और यह भी खयाल रखें कि जितना-जितना विचार की सामर्थ्य पैदा होती है, सोच पैदा होता है, जीवन को कसने और परखने की हिम्मत और विश्लेषण करने की हिम्मत पैदा होती है, संदेह करने की हिम्मत पैदा होती है, उतना ही उतना भीतर प्राणों का साहस बढ़ता है, आत्मा बलवान

होती है। जो लोग कभी संदेह ही नहीं करते, उनकी आत्मा कमजोर न हो जाएगी तो और क्या होगा?

एक मित्र ने पूछा है, वह अंतिम प्रश्न, उसके बाद मैं चर्चा बंद करूंगा।
एक मित्र ने पूछा हैः हमसे तो कहा जाता है कि हम मां-बाप, गुरु को आदर दें, सम्मान दें और उनकी बात को हमेशा प्रमाणिक मानें, उस पर शक न करें, उस पर संदेह न करें। तो मेरा क्या विचार है इस संबंध में?

पहली बात, अगर कोई भी आपसे कहता हो मुझे आदर दो, तो उसे आदर कभी मत देना; क्योंकि यह मांग उस आदमी के भीतर आदर-योग्य होने की कमी का सूचक है। अगर कोई कहता हो; अगर गुरु यह कहता हो, मुझे आदर दो, उसे कभी आदर मत देना, क्योंकि यह आदमी गुरु होने के योग्य ही नहीं रहा। गुरु कभी आदर नहीं मांगता। जो आदर मांगता है, वह गुरु नहीं रह जाता। आदर की मांग बड़े क्षुद्र मन की सूचना है। आदर मांगा नहीं जाता; आदर मिलता है।
मैं यह नहीं कहता कि मां-बाप को आदर दो। मैं यह कहता हूं, मां-बाप ऐसे होने चाहिए कि उन्हें आदर मिले। आदर मांगा नहीं जा सकता। और मांगा हुआ आदर एकदम झूठा होगा। अगर कोई देगा भी, वह झूठा होगा। अगर बच्चे आदर देंगे इसलिए कि मां-बाप मांगते हैं कि आदर दो, क्योंकि हम बुजुर्ग हैं, हमने जिंदगी देखी है और हमने यह किया और हमने वह किया। अगर इस वजह से वे आदर मांगते हैं, तो वे पक्का समझ लें, वे बच्चे में आदर नहीं, अनादर के बीज बो रहे हैं। हां, आज तो बच्चा कमजोर है इसलिए डर की वजह से आदर देगा। लेकिन कल आप कमजोर हो जाएंगे और बच्चा ताकतवर हो जाएगा; आप बूढ़े हो जाएंगे और बच्चा जवान हो जाएगा, तब? तब पासा बदल जाएगा। बच्चा सताएगा और अनादर देगा। ये जो जवान बच्चे अपने मां-बाप को अनादर दे रहे हैं, यह अकारण नहीं है। इनसे बचपन में जबरदस्ती आदर मांगा गया, उसका रिएक्शन है, उसकी प्रतिक्रिया है। जब इनके हाथ में ताकत आएगी, तो ये इसका बदला चुकाएंगे। आपके हाथ में ताकत थी, तो आपने आदर मांग लिया। अब इनके हाथ में ताकत है, तो अब ये उसका बदला चुकाएंगे कि जो आदर दिया था, उसको एक-एक रत्ती-रत्ती पाई चुकता कर लेंगे। सारी दुनिया में बच्चों की जो बगावत है, वह मां-बाप के प्रति नहीं है, मां-बाप के जबरदस्ती मांगे गए आदर के प्रति है। मां-बाप को कौन अनादर देगा? कोई कल्पना भी नहीं कर सकता उनको अनादर देने की। लेकिन मां-बाप होने तो चाहिए, वे हैं कहां? गुरु होने तो चाहिए, वे हैं कहां? इसलिए मैं यह नहीं कहता कि गुरु को आदर दो। मैं तो यह कहता हूं, जिसके प्रति तुम्हारा आदर खिंचा हुआ चला जाए, उसे गुरु समझ लो। मां-बाप को आदर मिलना नहीं चाहिए; दिया नहीं जाना चाहिए; मांगा नहीं जाना चाहिए। यह तो हद्द हो गई। अगर एक मां अपने बेटे से कहे कि तुम मुझे आदर दो, यह किस बात की खबर हुई? यह इस बात की खबर हुई कि वह मां मां होने में समर्थ नहीं हो सकीं। नहीं तो आदर तो मिलता। एक पिता अपने बेटे से कहे, मुझे आदर दो, क्योंकि मैं तुम्हारा पिता हूं। यह बात भी अगर कहनी पड़े और समझानी पड़े, तो बात खत्म हो गई। यह पिता पिता होने के योग्य नहीं था।
जब भी आदर मांगा जाता है तो समझ लेना चाहिए, समाज में आदर पाने योग्य लोग समाप्त हो गए। सचमुच योग्य व्यक्ति कभी आदर नहीं मांगता, सम्मान नहीं मांगता। और जिस व्यक्ति को इस बात का अहसास है कि वह जो कह रहा है, सच है, वह कभी यह नहीं कहता कि मेरी बात को प्रमाण मान लेना। जिस आदमी को अपनी बात पर शक होता है, वह हमेशा जोर देकर कहता है कि मेरी बात प्रमाण है, मैं जो कह रहा हूं, वह सत्य है। जिस आदमी को शक होता है अपनी बात पर, वह यह कहता है कि मैं जो कह रहा हूं, वह प्रमाणित है, इस पर शक करोगे, गर्दन काट देंगे। लेकिन जिसको अपनी सच्चाई पर, अनुभव पर, जिसे सीधा बोध होता है कि मैं जो कह रहा हूं, वह सच है, वह कभी ऐसा नहीं कहता। वह कहता है कि मुझे दिखाई पड़ता है कि यह सच है, तुम भी सोचना और खोजना। क्योंकि उसे इस बात का पता है कि अगर दूसरे व्यक्ति ने सोचा और खोजा, तो वह निश्चित ही इस नतीजे पर आ जाएगा, जो मैं उससे कह रहा हूं। लेकिन जिसको यह डर होता है कि मैं जो कह रहा हूं, पता

नहीं, वह सच है या झूठ, वह कहता है, यह प्रमाणिक है। और मेरी बात को इसलिए मान लेना कि मैं तुम्हारा पिता हूं; इसलिए मान लेना कि मैं गुरु हूं; इसलिए मान लेना कि मेरी उम्र तुमसे ज्यादा है। ये बातें सब कमजोरी के लक्षण हैं और झूठ के लक्षण हैं, सत्य के लक्षण नहीं हैं।
इसलिए कोई गुरु कभी नहीं कहता कि मेरी बात को प्रमाण मान लेना। वह कहता है, खोजना, अन्वेषण करना। वह यह नहीं कहता कि मेरी बात मान लो कि यही सच है। जो आदमी ऐसा कहता है, वह गुरु नहीं है, वह तो शत्रु है, क्योंकि वह आपके भीतर सोच-विचार के पैदा होने के बीज को नष्ट कर रहा है। वह आपको विश्वास की तरफ ले जा रहा है। विश्वास आपको अंधेपन की तरफ ले जाएगा। कल कोई दूसरा आदमी कहेगा कि मेरी बात मान लो, क्योंकि मेरी उम्र भी ज्यादा है, फिर आप उसकी बात भी मान लेना। परसों कोई तीसरा आदमी कहेगा कि मेरी बात मान लो, तो उसकी बात भी मान लेना।
सोवियत रूस में उन्नीस सौ सत्रह में क्रांति हुई। वहां के लोग मानते
थे कि ईश्वर है, विश्वास करते थे कि ईश्वर है। पुरोहित कहते थे, पादरी कहते थे, ईश्वर है; तो वे मानते थे। पुरोहित बड़ा आदमी था। गांव में उसकी इज्जत थी। उसके तगमे चमकते थे; उसके कपड़े चमकते थे। चर्च, उसका बड़ा मकान। पुरोहित की बड़ी इज्जत थी। खुद बादशाह भी आता तो पुरोहित के पैर छूता था। तो पुरोहित के हाथ में शक्ति थी, पॉवर था। तो पुरोहित कहता था, जो मैं कहता हूं, वही सत्य है। मैं कहता हूं कि क्राइस्ट कुंआरी लड़की से पैदा हुए, तो लोग मानते थे कि हुए। जब हुकूमत बदल गई और कम्युनिस्ट हुकूमत में आ गए और उन्होंने पुरोहितों को निकाल कर बाहर कर दिया और पुरोहित दीन-हीन हो गए, तो पॉवर बदल गया। पॉवर आ गया कम्युनिस्टों के हाथ में और कम्युनिस्टों ने कहाः कोई ईश्वर नहीं है, और उन्होंने कहाः कोई आत्मा नहीं है, कोई परमात्मा नहीं है। लोग इसको मान लिए। कोई आत्मा नहीं, कोई परमात्मा नहीं; ठीक है।
कल मानते थे पुरोहित को, क्योंकि वह ताकत में था। आज कम्युनिस्ट ताकत में आ गए, उन्होंने उसकी बात मान ली कि ठीक है, ये जो कहते हैं वही ठीक है। बीस साल के दोहराने के बाद रूस के लोग कहने लगे, कोई आत्मा नहीं, कोई परमात्मा नहीं, कोई पुनर्जन्म नहीं। ये वे ही लोग हैं, जो कल कहते थे ईश्वर है। और जो कहते थे, कुंआरी मरियम से क्राइस्ट पैदा हुआ। अब वे सब हंसने लगे और कहने लगे, वे सब बेवकूफी की बातें थीं। क्योंकि अब जो ताकत में आ गए, उन्होंने कहा कि वे बेवकूफी की बातें थीं। ये वे ही लोग; इनमें कोई फर्क नहीं पड़ा। ये विश्वास के परिणाम हुआ यह। अगर इन लोगों ने विचार किया होता और अगर इन्होंने क्राइस्ट को या परमात्मा की खोज को विचार से अंगीकार किया होता, तो कोई कम्युनिस्ट इनको यह समझाने में समर्थ नहीं हो सकता था कि ईश्वर नहीं है। इनके भीतर विचार का अनुभव होता। कोई दुनिया की ताकत उसको तोड़ नहीं सकती थी।
दुनिया में बड़ा खतरा है विश्वास के कारण। क्योंकि जो लोग विश्वास करते हैं, वे किसी भी चीज पर विश्वास कर सकते हैं। उन्हें कोई भी चीज समझाई जा सकती है, क्योंकि विश्वास करने वाला आदमी कभी विचार नहीं करता। इसलिए दुनिया की हुकूमतें, दुनिया के पोलिटिशियंस, दुनिया के धर्म-पुरोहित, दुनिया के शोषण करने वाले लोग, कोई भी यह नहीं चाहते कि आप विचार करो। वे सब चाहते हैं, विश्वास करो। क्योंकि आप विश्वास करोगे, तो दुनिया में कोई क्रांति नहीं होगी, कोई बगावत नहीं होगी। आपका शोषण मजे से होता रहेगा, आपको मूढ़ बनाया जाता रहेगा और आप चुपचाप चलते रहोगे। विचार से वे सब घबड़ाए हुए हैं। और विचार के न होने का यह परिणाम है कि पांच हजार साल से आदमी कष्ट उठा रहा है, न मालूम कितने प्रकार के, जिनका कोई हिसाब नहीं है। विचार पैदा होना चाहिए। क्योंकि विचार बगावत है, विचार रिबेलियन है। विचार पैदा होना चाहिए, तो शायद बगावत भी पैदा हो और हम एक नई दुनिया बनाने में समर्थ हो जाएं।
निश्चित ही पुरानी दुनिया तोड़नी पड़ेगी, नई दुनिया बनाने के लिए; पुराने ढांचे मिटाने होंगे, नये आदमी को जन्म देने के लिए।

पुरानी दुनिया भली नहीं थी। क्या आपको पता है, पांच हजार सालों में पंद्रह हजार युद्ध लड़े हैं पुरानी दुनिया ने। इस दुनिया को कोई भला कहेगा? यह दुनिया पागल रही होगी। जहां पांच हजार साल में पंद्रह हजार युद्ध लड़ने पड़े हों, जहां रोज युद्ध करने पड़े हों, जहां रोज हत्या करनी पड़ी हो, यह दुनिया अच्छी दुनिया रही होगी? यह पागलों की दुनिया रही होगी। इस दुनिया को बदल देना जरूरी है। और बदलने के लिए पहला सूत्र है, विश्वास करना नहीं, विचार करना, खोजना विवेक से, अपने प्राणों की पूरी ताकत से, जो ठीक लगे उसको स्वीकार करना। निश्चित ही जो मां-बाप अपने बच्चों को विचार करने में सहयोगी बनेंगे, बच्चे उनके लिए सदा के लिए आदर से भर जाएंगे। जो मां-बाप अपने बच्चों के लिए विचार और विवेक की शक्ति जगाने में सहयोगी होंगे, वे बच्चे आजीवन उन मां-बाप के प्रति सम्मान का अनुभव करेंगे। जो गुरु आदर नहीं मांगेगा, बल्कि इस तरह का जीवन जीएगा, जो कि बच्चे के भीतर स्वतंत्रता लाए, बच्चे के भीतर विचार और विवेक लाए, उस गुरु के प्रति उन बच्चों के माथे हमेशा के लिए झुक जाएंगे।
आदर तो मिलता है; मांगा नहीं जाता। प्रेम मिलता है; मांगा नहीं जाता। सम्मान मिलता है; खरीदा नहीं जाता। न भय दिखा कर पाया जाता है, न झपटा जाता है। लेकिन वह तभी मिलता है जब हम किसी की आत्मा को विकसित होने में सहयोगी बनते हैं। तो निश्चित ही वह आत्मा सदा के लिए ऋणी हो जाती है, वह आत्मा हमेशा के लिए अनुगृहीत हो जाती है, एक ग्रेटिट्यूड उसके भीतर पैदा हो जाता है। क्या आप अपने बच्चों को स्वतंत्र करने में सहयोगी हो रहे हैं? अगर हो रहे हैं, तो ये बच्चे आपको सम्मान देंगे। जितने ये स्वतंत्र होंगे, उतना सम्मान देंगे। क्या इन बच्चों में विचार पैदा कर रहे हैं? अगर इनमें विचार पैदा किया, तो ये अनुगृहीत होंगे। क्योंकि विचार इन्हें जीवन की बड़ी ऊंचाइयों पर ले जाएगा, जीवन के शिखरों पर ले जाएगा, जीवन की गहराइयों में ले जाएगा। विचारपूर्वक ये सत्य को किसी दिन जानने में समर्थ हो सकेंगे। ये आनंदित हो सकेंगे किसी दिन। और जिस क्षण इनके जीवन में आनंद उतरेगा, उस दिन आपके प्रति इनका ऋण, उस दिन आपके प्रति इनकी कृतज्ञता, उस दिन आपके प्रति इनकी धन्यता का कोई पारावार न होगा, कोई सीमा न होगी।
दुनिया से कृतज्ञता उठ गई है क्योंकि हम अपने बच्चों को परतंत्र कर रहे हैं, स्वतंत्र नहीं। हम अपने बच्चों को गुलाम बना रहे हैं, मुक्त नहीं; हम अपने बच्चों को दासता सिखा रहे हैं, विद्रोह नहीं। सच्चे मां-बाप और सच्चे गुरु बच्चों को विद्रोह सिखाते हैं, ताकि जो गलत है उसे वे तोड़ सकें; और साहस सिखाते हैं, ताकि जो सही है उसे वे निर्मित कर सकें। और बच्चे अगर गलत को तोड़ने में समर्थ हो जाएं और सही को सृजन करने में, तो निश्चित ही, निश्चित ही वे बच्चे सदा-सदा के लिए अपनी पुरानी पीढ़ी के चरणों में सिर को टेक देंगे।
लेकिन अभी जो हो रहा है और आज तक जो होता रहा है, उसने बच्चों को घबड़ा दिया है और एक क्लाइमेक्स पर बात पहुंच गई है जैसे। और सारी दुनिया में युवक पुरानी पीढ़ी के शत्रु हुए जा रहे हैं। इसमें जिम्मा किसका है? इसमें पुरानी पीढ़ी जिम्मेवार है। और अगर पुरानी पीढ़ी ने यह गलती की कि जिम्मेवारी नई पीढ़ी पर सौंपी, तो कोई फर्क न हो सकेगा। लेकिन अगर पुरानी पीढ़ी ने यह समझा कि कुछ बुनियादी भूलें हैं, जिनकी वजह से नई पीढ़ी भटक रही है; जिनकी वजह से नई पीढ़ी के मन में कोई कृतज्ञता का भाव नहीं है, कोई ग्रेटिट्यूड नहीं है, कोई सम्मान नहीं है, कोई आदर नहीं है, तो शायद हम नई पीढ़ी में वह भाव पैदा कर सकें, जो कि उसमें होना चाहिए। लेकिन वह मांगा नहीं जा सकता; वह बुलाया नहीं जा सकता; वह कहा नहीं जा सकता कि हमें दो। वह तो हमारे भीतर कुछ होगा परिवर्तन, तो अपने आप मिलता है। अपने आप मिलता है। सुबह सूरज निकलता है और हमारी आंखें उसकी तरफ उठ जाती हैं। बगीचे में फूल खिलते हैं और उनकी सुगंध से हम भर जाते हैं। अगर पुरानी पीढ़ी किसी सूरज को अपने भीतर जन्म दे सके और किसी सुगंध को, तो नई पीढ़ियां, नई पीढ़ियां तो हमेशा अनुगृहीत होने को हैं।
इतनी थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। और कुछ प्रश्न हैं, लेकिन उनका
तो उत्तर आज संभव नहीं हो पाएगा। और सभी प्रश्नों के उत्तर जरूरी भी नहीं

हैं। इसलिए नहीं कि वे प्रश्न कम महत्वपूर्ण हैं; बल्कि इसलिए कि जो बातें थोड़ी सी मैंने कहीं, अगर वे आपके खयाल में, समझ में आ जाएं, तो उनके आधार पर आप उन प्रश्नों के उत्तर भी पा सकेंगे, जिनके बाबत मैंने कुछ भी नहीं कहा। मेरा दृष्टिकोण आपके सामने मैंने रख दिया। यह दृष्टिकोण विश्वास कर लेने के लिए नहीं है। मैंने जो भी बातें कहीं, उन पर विश्वास कर लेने की कोई भी जरूरत नहीं है। मैं न तो गुरु हूं, न उपदेशक हूं, न मुझे यह भ्रम है कि जो बात मैं कहूं, उसे आप मान लें। मैंने ये बातें आपके सामने रखीं ताकि आप इन पर सोचें, विचार करें। जरूरी नहीं है कि विचार करने के बाद मेरी बातें आपको सही ही मालूम पड़ें। लेकिन एक बात है, अगर आपने विचार किया, तो मेरी बातें चाहे आपको गलत मालूम पड़ें लेकिन जितना आप विचार करेंगे, उससे आपके भीतर विवेक की शक्ति विकसित होगी और बड़ी होगी। मेरी बातों का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन उन पर विचार करने में आपके भीतर विचार की शक्ति विकसित होगी। और वह विचार की शक्ति विकसित हो जाए, तो आप खुद ही अपने प्रश्नों के उत्तर पा लेने में समर्थ हो जाएंगे।
कोई दूसरा आदमी किसी के प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकता। कोई दूसरा आदमी किसी की प्यास नहीं बुझा सकता। हर आदमी की प्यास अद्वितीय है, यूनीक है। हर आदमी अलग है। हर आदमी बेजोड़ है, उस जैसा कोई दूसरा आदमी नहीं है। हर आदमी का प्रश्न भी बेजोड़ है, उसका उत्तर मेरे पास कैसे हो सकता है? आपका प्रश्न है, इस जमीन पर किसी के पास आपका उत्तर नहीं हो सकता। फिर मैं किसलिए बोल रहा हूं? मैं इसलिए नहीं बोल रहा हूं कि आपको मैं उत्तर दे दूं। मैं इसलिए बोल रहा हूं, ताकि आपको अपने भीतर उत्तर खोजने की विधि, मेथड मिल जाए, सोच-विचार मिल जाए, आप चीजों को सोचने-विचारने लगें, तो आपके भीतर जहां से प्रश्न पैदा हुआ है, वहीं उत्तर भी सदा मौजूद है। और जब अपने भीतर का उत्तर आता है, तो वह उत्तर मुक्त कर देता है। वह उत्तर ही जीवन-दर्शन बन जाता है; वह उत्तर ही जीवन का सत्य बन जाता है; वह उत्तर ही हमारे प्राणों की प्यास को बुझाने वाला जल बन जाता है। उसको खोजें। मुझ पर या किसी पर विश्वास करने से वह नहीं मिलेगा, बल्कि संदेह करने से मिलेगा।
तो मैंने जो बातें कहीं उन पर खूब संदेह करें, उनका खूब विश्लेषण करें, उनको तोड़ें-फोड़ें, उनको बजाएं और परखें। हो सकता है वे सारी बातें गलत हों, तो उन सारी बातों के गलत होने में भी आपको सही की झलक मिलनी शुरू हो जाएगी। और हो सकता है कोई बात उसमें सही हो, तो आपकी खोज-बीन से वह सही आपको दिखाई पड़ जाएगा। और तब उससे मेरा कोई संबंध नहीं होगा; वह सत्य आपका हो जाएगा। और जो सत्य आपका है, वही सत्य है। दूसरों के सब सत्य असत्य हैं। आपका सत्य ही सत्य हो सकता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

आनंद की खोज
तीसरा प्रवचन

विश्वास--सबसे बड़ा बंधन

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक संध्या एक पहाड़ी सराय में एक नया अतिथि आकर ठहरा। सूरज ढलने को था, पहाड़ उदास और अंधेरे में छिपने को तैयार हो गए थे। पक्षी अपने निबिड़ में वापस लौट आए थे। तभी उस पहाड़ी सराय में वह नया अतिथि पहुंचा। सराय में पहुंचते ही उसे एक बड़ी मार्मिक और दुख भरी आवाज सुनाई पड़ी। पता नहीं कौन चिल्ला रहा था? पहाड़ की सारी घाटियां उस आवाज से भर गई थी। कोई बहुत जोर से चिल्ला रहा था--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता।
वह अतिथि सोचता हुआ आया, किन प्राणों से यह आवाज उठ रही है? कौन प्यासा
है स्वतंत्रता को? कौन गुलामी के बंधनों को तोड़ देना चाहता है? कौन सी आत्मा यह पुकार कर रही? प्रार्थना कर रही?
और जब वह सराय के पास पहुंचा, तो उसे पता चला, यह किसी मनुष्य की आवाज नहीं थी, सराय के द्वार पर लटका हुआ एक तोता स्वतंत्रता की आवाज लगा रहा था।
वह अतिथि भी स्वतंत्रता की खोज में जीवन भर भटका था। उसके मन को भी उस तोते की आवाज ने छू लिया।
रात जब वह सोया, तो उसने सोचा, क्यों न मैं इस तोते के पिंजड़े को खोल दूं, ताकि यह मुक्त हो जाए। ताकि इसकी प्रार्थना पूरी हो जाए। अतिथि उठा, सराय का मालिक सो चुका था, पूरी सराय सो गई थी। तोता भी निद्रा में था, उसने तोते के पिंजड़े का द्वार खोला, पिंजड़े के द्वार खोलते ही तोते की नींद खुल गई, उसने जोर से सींकचों को पकड़ लिया और फिर चिल्लाने लगा--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता।
वह अतिथि हैरान हुआ। द्वार खुला है, तोता उड़ सकता था, लेकिन उसने तो सींकचे को पकड़ रखा था। उड़ने की बात दूर, वह शायद द्वार खुला देख कर घबड़ा आया, कहीं मालिक न जाग जाए। उस अतिथि ने अपने हाथ को भीतर डाल कर तोते को जबरदस्ती बाहर निकाला। तोते ने उसके हाथ पर चोटें भी कर दीं। लेकिन अतिथि ने उस तोते को बाहर निकाल कर उड़ा दिया।
निश्चिंत होकर वह मेहमान सो गया उस रात। और अत्यंत आनंद से भरा हुआ।
एक आत्मा को उसने मुक्ति दी थी। एक प्राण स्वतंत्र हुआ था। किसी की प्रार्थना पूरी करने में वह सहयोगी बना। वह रात सोया और सुबह जब उसकी नींद खुली, उसे फिर आवाज सुनाई पड़ी, तोता चिल्ला रहा था--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता।
वह बाहर आया, देखा, तोता वापस अपने पिंजड़े में बैठा हुआ है। द्वार खुला है और तोता चिल्ला रहा है--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। वह अतिथि बहुत हैरान हुआ। उसने सराय के मालिक को जाकर पूछा, यह तोता पागल है क्या? रात मैंने इसे मुक्त कर दिया था, यह अपने आप पिंजड़े में वापस आ गया है और फिर भी चिल्ला रहा, स्वतंत्रता?
सराय का मालिक पूछने लगा, उसने कहा, तुम भी भूल में पड़ गए। इस सराय में जितने मेहमान ठहरते हैं, सभी इसी भूल में पड़ जाते हैं। तोता जो चिल्ला रहा है, वह उसकी अपनी आकांक्षा नहीं, सिखाए हुए शब्द हैं। तोता जो चिल्ला रहा है, वह उसकी अपनी प्रार्थना नहीं, सिखाए हुए शब्द हैं, यांत्रिक शब्द हैं। तोता स्वतंत्रता नहीं चाहता, केवल मैंने सिखाया है वही चिल्ला रहा है। तोता इसीलिए वापस लौट आता है। हर रात यही होता है, कोई अतिथि दया खाकर तोते को मुक्त कर देता है। लेकिन सुबह तोता वापस लौट आता है।
मैंने यह घटना सुनी थी। और मैं हैरान होकर सोचने लगा, क्या हम सारे मनुष्यों की भी स्थिति यही नहीं है? क्या हम सब भी जीवन भर नहीं चिल्लाते हैं--मोक्ष चाहिए, स्वतंत्रता चाहिए, सत्य चाहिए, आत्मा चाहिए, परमात्मा चाहिए? लेकिन मैं देखता हूं कि हम चिल्लाते तो जरूर हैं, लेकिन हम उन्हें सींकचों को पकड़े हुए बैठे रहते हैं जो हमारे बंधन हैं। हम चिल्लाते हैं, मुक्ति चाहिए, और हम उन्हीं बंधनों की पूजा करते रहते हैं जो हमारा पिंजड़ा

बन गया, हमारा कारागृह बन गया। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह मुक्ति की प्रार्थना भी सिखाई गई प्रार्थना हो, यह हमारे प्राणों की आवाज न हो? अन्यथा कितने लोग स्वतंत्र होने की बातें करते हैं, मुक्त होने की, मोक्ष पाने की, प्रभु को पाने की। लेकिन कोई पाता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। और रोज सुबह मैं देखता हूं, लोग अपने पिंजड़ों में वापस बैठे हैं, रोज अपने सींकचों में, अपने कारागृह में बंद हैं। और फिर निरंतर उनकी वही आकांक्षा बनी रहती है।
सारी मनुष्य-जाति का इतिहास यही है। आदमी शायद व्यर्थ ही मांग करता
है स्वतंत्रता की। शायद सीखे हुए शब्द हैं। शास्त्रों से, परंपराओं से, हजारों वर्ष के प्रभाव से सीखे हुए शब्द हैं। हम सच में स्वतंत्रता चाहते हैं? और स्मरण रहे कि जो व्यक्ति अपनी चेतना को स्वतंत्र करने में समर्थ नहीं हो पाता, उसके जीवन में आनंद की कोई झलक कभी उपलब्ध नहीं हो सकेगी। स्वतंत्र हुए बिना आनंद का कोई मार्ग नहीं है।
दासता ही दुख है। यह जो स्प्रिचुअल स्लेवरी है, यह जो हमारी मानसिक गुलामी है, वही हमारा दुख, वही हमारी पीड़ा, वही हमारे जीवन का संकट है। शायद हम सबके मन में उससे मुक्त होने का खयाल भी पल रहा हो। लेकिन हमें पता नहीं कि जिन बातों को हम पकड़े हुए बैठे रहते हैं वे ही हमारे बंधन को पुष्ट करने वाली बातें हैं। उन थोड़े से बंधनों पर मैं चर्चा करूंगा। और उन्हें तोड़ने के संबंध में भी। ताकि मनुष्य की आत्मा मुक्ति का कोई मार्ग खोज सके।
मनुष्य के ऊपर सबसे बड़े बंधन क्या हैं?
हैरान होंगे आप यह जान कर कि मनुष्य के ऊपर सबसे बड़े बंधन विश्वास के, ... के बंधन हैं। शायद हमें इसका खयाल भी न हो। हम तो सोचते हैं, जो मनुष्य विश्वासी है, जो मनुष्य श्रद्धालु है, वही धार्मिक है। और मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा, धर्म का श्रद्धा और विश्वास से कोई भी संबंध नहीं है। श्रद्धा और विश्वास से गुलामी का संबंध है, धर्म का संबंध नहीं। धर्म तो परम स्वतंत्रता से संबंध रखता है। धर्म तो परम स्वतंत्रता की आकांक्षा है। और विश्वास और श्रद्धाएं बंधन हैं, स्वतंत्रताएं नहीं।
विश्वास का मतलब हैः जो हम नहीं जानते उसे हमने मान रखा है। और जो हम नहीं जानते उसे मान लेना चित्त को गुलाम बनाता है। ज्ञान तो मुक्त करता है। विश्वास? विश्वास बंधन में बांधता है। सारी दुनिया विश्वासों के बंधन में पीड़ित है। फिर चाहे उन विश्वासों का नाम हिंदू हो, उन विश्वासों का नाम मुसलमान हो, उन विश्वासों का नाम ईसाई हो, उन विश्वासों का नाम जैन हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। विश्वास मात्र मनुष्य के चित्त को मुक्त नहीं होने देते। विश्वास मात्र मनुष्य के जीवन में विचार को पैदा नहीं होने देते। और विचार, विचार की तीव्र शक्ति का जाग जाना विवेक का प्रबुद्ध हो जाना ही स्वतंत्रता का पहला चरण है। मनुष्य की आत्मा मुक्त हो सकती है विचार की ऊर्जा से, विश्वासों के बंधनों से नहीं।
लेकिन यदि हम अपने मन की खोज करेंगे, तो पाएंगे, हम सब विश्वासों से बंधे हुए हैं। विश्वास हमारे अज्ञान को बचा लेने का कारण बन जाते हैं। बचपन से ही हमें कुछ बातें सिखा दी जाती हैं और हम उनको मान लेते हैं बिना पूछे, बिना प्रश्न किए, बिना खोजे, बिना अनुभव किए हम स्वीकार कर लेते हैं।
यह स्वीकृति, यह सहयोग ही हमारे हाथ से अपने ही बंधन निर्मित करने का कारण हो जाते हैं।
मैं एक छोटे से अनाथालय में गया था। वहां अनाथालय के संयोजकों ने मुझसे कहा कि हम अपने बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं।
मेरी दृष्टि में तो धर्म की कोई शिक्षा हो ही नहीं सकती। धर्म की साधना हो सकती है, शिक्षा नहीं। क्योंकि शिक्षा दी जाती है बाहर से और साधना का जन्म होता है भीतर से। धर्म की कोई शिक्षा मेरी दृष्टि में नहीं हो सकती।
तो मैंने उनसे पूछा, मैं जरूर चल कर देखना चाहूंगा, आप क्या शिक्षा देते हैं।
वे मुझे बहुत खुशी से अपने अनाथालय में ले गए।

अनाथ, दीन-हीन बच्चे थे, उन्हें जो भी सिखाया था सीखना पड़ा था। उन्होंने उन बच्चों से पूछा, ईश्वर है? वे सारे दीन-हीन बच्चे हाथ उठा कर ऊपर खड़े हो गए ईश्वर की स्वीकृति में कि ईश्वर है!
उन बच्चों को पता है ईश्वर के होने का? उन्हें ईश्वर का कोई भी अंदाज है? कोई भी अनुभव? उन्हें ईश्वर के प्रकाश की कोई भी किरण मिली है? नहीं, कोई भी किरण का उन्हें पता नहीं। उन्हें जो यह सिखाया गया है कि ईश्वर है, और जब हम पूछें कि ईश्वर है, तो तुम हाथ ऊपर उठाना।
उन्होंने हाथ ऊपर उठा दिए।
वे हाथ बिल्कुल झूठे और असत्य हैं। वे हाथ ज्ञान के हाथ नहीं, विश्वास
के हाथ हैं। वे हाथ असत्य हैं।
फिर उनसे पूछा कि आत्मा है?
उन सारे बच्चों ने फिर हाथ उठा दिए।
उनसे पूछाः आत्मा कहां है?
उन सबने अपने हृदय पर हाथ रख लिए।
ये सारी सूचनाएं झूठी हैं। यह हृदय पर जाता हुआ हाथ झूठा है। सिखाया हुआ हाथ है यह।
मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछाः हृदय कहां है?
उस बच्चे ने कहाः यह तो हमें बताया नहीं गया, मुझे मालूम नहीं।
जिस बच्चे को हृदय का भी पता नहीं कि कहां है, उसे यह पता है कि आत्मा यहां है, परमात्मा यहां है! यह कैसे पता हो सकता है? फिर यह बच्चे को जब वह अबोध है, जब अभी उसके भीतर विचार का, चिंतन का जन्म नहीं हुआ, यह बात उसके मन में डाल दी गई। वह बच्चा बड़ा होगा, यह बात उसके खून में मिल जाएगी। वह जवान होगा, वह बूढ़ा हो जाएगा, और जब भी जीवन में प्रश्न उठेगा उसके ईश्वर है, तो बचपन का सीखा हुआ हाथ ऊपर उठ जाएगा और कहेगा, ईश्वर है। यह उत्तर झूठा होगा। चूंकि यह उत्तर बाहर से सिखाया गया है। इस उत्तर का धर्म से कोई संबंध नहीं रह जाता।
अगर ये बच्चे रूस में पैदा हुए होते, तो रूस की हुकूमत और रूस के गुरु इन्हें दूसरी बात सिखाते। वे सिखातेः कोई ईश्वर नहीं है, कोई आत्मा नहीं है। ये बच्चे रूस में इस बात को सीख लेते और जिंदगी भर इसी बात को दोहराते रहते। रूस में जो बात सिखाई जाती है वह सत्य होती है? शायद आपका मन कहेगा कि हम तो सत्य सिखा रहे हैं, वे असत्य सिखा रहे हैं। लेकिन मैं आपसे निवेदन करता हूं, सत्य को सिखाया ही नहीं जा सकता, जो भी सिखाया जाता है वह सब असत्य होता है। क्योंकि सिखाई गई बात व्यक्ति के प्राणों से नहीं उठती, ऊपर से डाल दी जाती है। हम सब भी जो बातें जानते हैं जीवन के संबंध में, वे भी सीखी हुई बातें हैं इसलिए झूठी हैं। इसलिए उन बातों से हमारे जीवन का अंधकार नहीं मिटता है। इसलिए उस ज्ञान से हमारे जीवन में आनंद की कोई वर्षा नहीं होती। इसलिए उस रोशनी से हमारे जीवन में कोई मुक्ति, कोई स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं होती।
विश्वास से उपलब्ध हुआ ज्ञान धर्म नहीं है। लेकिन हमारा सारा ज्ञान
ही विश्वास से उपलब्ध हुआ है। क्या हमें कोई ऐसे ज्ञान का भी अनुभव है जो विश्वास से नहीं अनुभव से उपलब्ध हुआ हो? अगर ऐसे किसी ज्ञान का कोई अनुभव नहीं है तो उचित है कि हम अपने को अज्ञानी जानें, ज्ञानी न मान लें। तो उचित है कि हम समझें कि हम नहीं जानते हैं। वैसी समझ से भी, मैं नहीं जानता हूं, जानने की खोज का प्रारंभ हो सकता है। लेकिन इस भ्रांत खयाल से कि मुझे पता है, हमारे जानने की यात्रा भी शुरू नहीं हो पाती। और तब यह जानने का भ्रम हमारा पिंजड़ा बन जाता है, जिसमें हम बंद हो जाते हैं।
हम सब अपने-अपने ज्ञान में बंद हो गए हैं, थोथे ज्ञान में, शब्दों के ज्ञान में, शास्त्रों और सिद्धांतों के ज्ञान में बंद हो गए हैं। और उसी बंधन को हम जोर से पकड़े हुए हैं। और फिर चाहते हैं कि स्वतंत्र हो जाएं, यह स्वतंत्र होना कैसे संभव हो सकेगा? ज्ञान की उपलब्धि के लिए, जो ज्ञान बाहर से सीख लिया गया उससे, उससे छुटकारा पाना होता है। यह बहुत कष्टपूर्ण प्रक्रिया है। वस्त्र निकालना आसान है, धन छोड़ देना आसान है, घर-द्वार, पत्नी-बच्चों को छोड़ देना बहुत आसान है, कठिन है तपश्चर्या उस ज्ञान को

छोड़ देने की जो हम सीख कर बैठ गए होते हैं। इसलिए एक व्यक्ति घर छोड़ देता, पत्नी छोड़ देता, समाज छोड़ देता, लेकिन उन शास्त्रों को नहीं छोड़ पाता है जिनको बचपन से सीख लिया है।
संन्यासी भी कहता है, मैं जैन हूं। संन्यासी भी कहता है, मैं हिंदू हूं। संन्यासी भी कहता है, मैं ईसाई हूं। हद्द पागलपन की बातें हैं। संन्यासी भी हिंदू, ईसाई और मुसलमान हो सकता है? संन्यासी की भी सीमाएं हो सकती हैं? संन्यासी का भी संप्रदाय हो सकता है? नहीं, लेकिन बचपन से सीखी गई धारणाओं से छुटकारा पाना बहुत कठिन है।
नग्न खड़ा हो जाना आसान। भूखा, उपवासी खड़ा हो जाना अत्यंत सरल। प्रियजनों को, समाज को छोड़ देना बहुत सुविधापूर्ण, लेकिन चित्त पर सिखाए गए ज्ञान की जो पर्तें जम जाती हैं उन्हें उखाड़ देना बहुत कठिन है, बहुत आर्डुअस है।
इसलिए मैं तपश्चर्या एक ही बात को कहता हूं, सीखे हुए ज्ञान को छोड़ देना तप है। और जो सीखे हुए ज्ञान को छोड़ने की सामर्थ्य उपलब्ध कर लेता है, उसे उस ज्ञान की उपलब्धि होनी शुरू हो जाती है जो अनसीखा है जिसे कभी सीखा नहीं जाता, जो भीतर छिपा है और मौजूद है। ज्ञान तो मनुष्य की चेतना में समाविष्ट है। ज्ञान ही तो मनुष्य की आत्मा है। लेकिन चूंकि हम बाहर से सीखे हुए ज्ञान को इकट्ठा कर लेते हैं इसलिए भीतर के ज्ञान को बाहर पाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह भीतर ही पड़ा रह जाता है। वह तो बाहर उठता तभी है जब हम बाहर से जो भी सीखा है उसको अलग कर दें ताकि भीतर जो छिपा है वह प्रकट हो सके। आत्मा के ज्ञान की, आत्मा के ज्ञान के आविर्भाव की संभावना ऊपर की सारी पर्तों को तोड़ देने पर ही उपलब्ध होती है। लेकिन हम तो इन पर्तों को मजबूत किए चले जाते हैं। रोज इकट्ठा किए चले जाते हैं। रोज इन पर्तों को भरते चले जाते हैं, ताकि हमें यह खयाल हो सके कि मैं जानता हूं। यह मैं जानता हूं बाहर से सीखे गए शब्दों के आधार से बिल्कुल झूठ और व्यर्थ है। क्या आपको पता है, अब तो मशीनें भी इस तरह के ज्ञान को जानने लगी हैं। कंप्यूटर्स पैदा हो गए हैं। अब तो ऐसी मशीनें बन गई हैं जिन्हें ज्ञान सिखाया जा सकता है। जिन्हें महावीर की पूरी वाणी सिखाई जा सकती है। और फिर उन मशीनों से प्रश्न पूछे जा सकते हैं कि महावीर ने अहिंसा पर क्या कहा? मशीन इतने सही उत्तर देती है कि कोई आदमी कभी नहीं दे सका है।
आपको शायद पता न हो, कोरिया का युद्ध आदमी की सलाह से बंद नहीं हुआ, कोरिया का युद्ध मशीन की सलाह से बंद किया गया। मशीन को सारा ज्ञान दे दिया गया कि चीन के पास कितनी सामग्री है युद्ध की, कितने सैनिक हैं, चीन की कितनी शक्ति है, चीन कितने दिन लड़ सकता है। और हमारी, कोरिया के पास कितनी ताकत है, कितने सैनिक हैं, कितने दिन लड़ सकते हैं। मशीन को दोनों ज्ञान दे दिए गए। फिर मशीन से पूछा गया, युद्ध जारी रखा जाए या बंद कर दिया जाए? मशीन ने उत्तर दिया, युद्ध बंद कर दिया जाए। कोरिया हार जाएगा।
आज अमरीका और रूस में सारा ज्ञान मशीनों को खिलाया-पिलाया जा सकता है,
और उनसे उत्तर लिए जा सकते हैं।
आप भी क्या करते हैं बचपन से? ज्ञान खिलाया जाता है स्कूलों में, पाठशालाओं में, धर्म-मंदिरों में, आपके दिमाग में ज्ञान डाला जाता है। फिर उस डाले हुए ज्ञान की स्मृति इकट्ठी हो जाती है। फिर उसी स्मृति से आप उत्तर देते हैं। इस उत्तर देने में आप कहीं भी नहीं हैं, केवल मन की मशीन काम कर रही है।
आपको सिखा दिया गया है कि ईश्वर है। फिर कोई प्रश्न पूछता है, ईश्वर है, आप कहते हैं, हां, ईश्वर है।
इस उत्तर में आप कहीं भी नहीं हैं। यह सीखा हुआ उत्तर मन का यंत्र वापस लौटा रहा है। अगर यह आपको न बताया जाए कि ईश्वर है, आप उत्तर नहीं दे सकेंगे।
आपसे कोई पूछता है, आपका नाम क्या है? आप कहते हैं, मेरा नाम राम है।
इसमें आप सोचते हों कि कुछ सोच-विचार है, तो आप गलती में हैं। बचपन से आपकी स्मृति पर थोपा जा रहा है तुम्हारा नाम, राम, तुम्हारा नाम राम। फिर कोई पूछता है, आपका नाम? स्मृति उत्तर देती है, मेरा नाम राम है।

मेरे एक मित्र डाक्टर हैं, वे ट्रेन से गिर पड़े। सिर को चोट लग गई।
उनका नाम-वगैरह भूल गए। वह जो डाक्टरी उन्होंने पढ़ी थी, वह सब खतम हो गई।
यंत्र चोट खा गया। तीन साल हो गए, अब उनसे कोई पूछे कि आपका नाम? वे बैठे रहें। इन तीन सालों में जो नई घटनाएं घटी हैं वे तो उन्हें याद हैं लेकिन तीन साल के पहले जो हुआ था वह उन्हें याद नहीं। यंत्र चोट खा गया।
स्मृति यांत्रिक है। मैकेनिकल है। स्मृति ज्ञान नहीं है। मैमोरी ज्ञान नहीं है। और हमारे पास स्मृति के सिवाय और क्या है। अगर आपसे मैं पूछूं कि आपके पास एकाध भी विचार ऐसा है जो आपका हो? तो क्या आप हां में उत्तर दे सकेंगे? एक भी विचार ऐसा है जो आपका हो? जो आपने सीख न लिया हो? सब विचार सीखे हुए हैं, सब विचार उधार हैं, सब विचार बारोड हैं। इसलिए विचार का संग्रह ज्ञान नहीं है। फिर ज्ञान क्या है? विचार का संग्रह ज्ञान नहीं है, बल्कि निर्विचार की उपलब्धि ज्ञान है। एक ऐसी चित्त-दशा जहां कोई विचार न रह जाए। इतनी शांत और मौन, जहां कोई विचार की तरंग न हो, वहां जो अनुभव होता है, वह ज्ञान है। वह ज्ञान मुक्त करता है। और जो ज्ञान हम इकट्ठा कर लेते हैं स्मृति से, वह मुक्त नहीं करता, बांधता है। हम सब अपने ही सीखे हुए ज्ञान में बंधे हुए लोग हैं। अपने ही ज्ञान से हमने पिंजड़ा बनाया हुआ है। यह जो हमारी पहली परतंत्रता है, पहला बंधन है, ज्ञान का। दूसरा बंधन है, अनुकरण का। हम सब किसी का अनुकरण कर रहे हैं। कोई महावीर का, कोई बुद्ध का, कोई राम का, कोई कृष्ण का। हम सब किसी के पीछे चल रहे हैं। हम सब फॉलोअर्स हैं, अनुयायी हैं। पृथ्वी पर धर्म का जन्म नहीं हो पाया अनुयायियों के कारण। क्योंकि धर्म किसी का अनुगमन नहीं है। किसी के पीछे जाना नहीं है, धर्म है अपने भीतर जाना। और जो किसी के पीछे जाता है वह कभी अपने भीतर नहीं जा सकता। क्योंकि किसी के पीछे जाने के लिए बाहर जाना पड़ता है। महावीर के पीछे जाएं, बुद्ध के पीछे जाएं, कृष्ण के पीछे जाएं, मेरे पीछे जाएं, किसी के भी पीछे जाएं। किसी के पीछे जाएंगे तो आप बाहर जा रहे हैं। क्योंकि जिसके पीछे आप जा रहे हैं वह आपके बाहर है। जाना है अपने भीतर, जा रहे हैं किसी के पीछे। जो किसी के पीछे जाता है वह भटक जाता है। सब अनुयायी भटक जाते हैं। जो अपने भीतर जाता है, किसी का अनुयायी नहीं है जो, किसी का फॉलोअर नहीं है जो, जो अपनी ही आत्मा का अनुसरण करता है, वही व्यक्ति केवल धर्म को, सत्य को उपलब्ध होता है, वही केवल मुक्ति को उपलब्ध होता है। लेकिन हम सब तो किसी के अनुयायी हैं। और हमें हजारों वर्ष से यही सिखाया जा रहा है कि पीछे चलो। पीछे चलने की शिक्षा सबसे विषाक्त, सबसे विषपूर्ण, सबसे पाय.जनस है। इसने आदमी के जीवन को नष्ट कर दिया। इसलिए नष्ट कर दिया है, पहली बात, कोई मनुष्य किसी के पीछे जब भी जाएगा तब आत्मच्युत हो जाएगा, तब वह अपनी आत्मा से डिग जाएगा। तब वह इस कोशिश में लग जाएगा कि मैं किसी दूसरे जैसा हो जाऊं--

महावीर जैसा हो जाऊं, बुद्ध जैसा हो जाऊं। तब वह एक अभिनेता बन जाएगा,
तब वह एक ऐक्टर, तब वह इस कोशिश में होगा कि मैं दूसरे जैसा हो जाऊं। लेकिन क्या आपको पता है कि कोई मनुष्य कभी भी दूसरे जैसा न हुआ है, न हो सकता है। महावीर को हुए कितना समय हुआ? ढाई हजार वर्ष। ढाई हजार वर्ष में कितने नासमझ लोगों ने महावीर जैसे बनने की कोशिश नहीं की है। लेकिन कोई महावीर बन सका है? राम को हुए कितना समय हुआ? क्राइस्ट को हुए कितना समय हुआ? कोई दूसरा क्राइस्ट पैदा हुआ है? कोई व्यक्ति कभी किसी दूसरे जैसा नहीं बन सकता। प्रत्येक व्यक्ति, आदमी की आत्मा अद्वितीय, बेजोड़, यूनीक है। हर मनुष्य अपने ही तरह का हो सकता है, किसी दूसरे तरह का नहीं हो सकता है। एक-एक आदमी बेजोड़ है, अनूठा है। यही तो गरिमा है! यही तो सौंदर्य है! यही तो आत्मा की प्रतिष्ठा है कि कोई आत्मा किसी दूसरे की नकल नहीं है। जो चीज नकल हो सकती है वह जड़ हो जाती है।
फोर्ड की कारें एक जैसी लाखों हो सकती हैं। एक दिन में हजारों मोटरगाड़ियां एक सी निकाली जा सकती हैं, बिल्कुल एक सी, क्योंकि गाड़ी, मोटरगाड़ी एक यंत्र है, उसके पास कोई चेतना नहीं है। लेकिन दो मनुष्य एक जैसे नहीं बनाए जा सकते। और जिस दिन दो मनुष्य एक जैसे बनाए जाएंगे, वह

मनुष्य-जाति के इतिहास में सबसे दुर्भाग्य का दिन होगा। क्योंकि उसी दिन आदमी की हत्या हो जाएगी। आदमी मशीन हो जाएगा।
आदमी यंत्र नहीं है, आदमी है सचेतन प्राण। सचेतन प्राण किसी पैटर्न में, किसी ढांचे में नहीं ढाला जा सकता। चाहे वह ढांचा कितना ही सुंदर हो, कितने ही महापुरुष का हो, कोई किसी ढांचे में नहीं ढाला जा सकता। लेकिन हम ढांचे में ढालने की कोशिश करते रहे हैं। और इससे हमने आदमी के जीवन को बिल्कुल ही विकृत कर दिया है। हम सब भी अपने को ढांचे में ढालने की कोशिश करते हैं। गांधी जैसे बन जाएं, इस जैसे बन जाएं, उस जैसे बन जाएं। गांधी बहुत सुंदर हैं, बहुत अच्छे; महावीर बहुत अनूठे हैं, बहुत अदभुत; बुद्ध बड़े महिमाशाली हैं, लेकिन आपको पता है, बुद्ध ने अपने को किसके ढांचे में ढाला? गांधी किसकी नकल हैं? क्राइस्ट किसकी कार्बनकापी हैं? वे सारे लोग अनूठे हैं अपने जैसे। लेकिन हम उन जैसे होने की कोशिश करेंगे तो भटक जाएंगे। हम भूल कर लेंगे। हमारा जीवन गलत पटरियों पर दौड़ जाएगा। और हमारा जीवन गलत पटरियों पर दौड़ रहा है।
दूसरी बात, अनुकरण मनुष्य के चित्त में गुलामी पैदा करता है। मनुष्य हीन हो जाता है। जब भी अनुकरण करता है तब दीन-हीन हो जाता है। अपने को अस्वीकार करता है, दूसरे को स्वीकार करता है। अपने को तोड़ता है, मिटाता है, दूसरे के नकल में अपने को बनाता है। तब उसकी आत्मा सब तरफ से दीन-हीन हो जाती है। और यह दीनता और हीनता मुक्ति नहीं ला सकती।
पहली बात है, अपनी आत्मा का, निजता का गौरव, गरिमा, अपनी आत्मा के अनूठे होने की स्वीकृति, अपने को दीन-हीन मानने के भाव का त्याग धार्मिक मनुष्य का दूसरा गुण है। पहला गुण हैः विचार करने की क्षमता। दूसरा गुण हैः स्वयं जैसे होने का साहस। करेज टु बी वनसेल्फ। खुद होने का, खुद जैसे होने का साहस। यही धार्मिक मनुष्य का दूसरा लक्षण है। जो खुद जैसे होने का साहस करता है उसे इस जगत में कोई बंधन नहीं बांध सकते। लेकिन हम तो अपने हाथ से दूसरे जैसे होने की कोशिश करते हैं। तो फिर बंधन तो अपने आप खड़े हो जाते हैं। पिंजड़े को हम खुद ही पकड़ लेते हैं और फिर रोते चिल्लाते हैं कि स्वतंत्र होना है, मोक्ष चाहिए। कैसे स्वतंत्र हो सकेंगे?
दूसरी बात, बंधन है मनुष्य के ऊपर अनुकरण। और तीसरी बात, क्या है मनुष्य के ऊपर बंधन? और ये तीन सूत्र अगर हमें समझ आ जाएं, तो हम कैसे मुक्त हो सकते हैं वह भी समझ में आ सकता है। तीसरी कौन सी कड़ियां मनुष्य को बांध लेती हैं? तीसरी कड़ियां हैं, आदर्श, आइडियलस। मेरे भीतर हिंसा है, मेरे भीतर क्रोध है, मेरे भीतर सेक्स है, काम है, वासना है, मेरे भीतर झूठ है। दो रास्ते हैं इस स्थिति को सामना करने के लिए। एक रास्ता तो यह है कि मेरे भीतर हिंसा है, तो मैं अहिंसा ओढ़ने की कोशिश करूं, ताकि हिंसा मिट जाए। मेरे भीतर क्रोध है, तो मैं शांति साधने की कोशिश करूं, ताकि क्रोध नष्ट हो जाए। मेरे भीतर सेक्स है, तो मैं ब्रह्मचर्य की कसमें लूं, व्रत लूं, ताकि मेरा सेक्स विलीन हो जाए। एक रास्ता तो यह है। यह रास्ता गलत है। इस रास्ते में मनुष्य कभी भी शांत, स्वस्थ, मुक्त नहीं होता, बल्कि और बंधन में पड़ता चला जा सकता है। क्यों? क्योंकि भीतर होता है क्रोध, और वह शांति का एक आदर्श निर्मित कर लेता है और उस आदर्श को ओढ़ने की कोशिश करता है। परिणाम क्या होता है? परिणाम होता है दमन। भीतर क्रोध को दबा-दबा कर छिपाता है, ऊपर शांति को थोपता है। क्रोध ऐसे नष्ट नहीं होता। भीतर इकट्ठा होता चला जाता है। उसके और गहरे प्राणों में क्रोध प्रविष्ट हो जाता है। मैंने सुना है, एक गांव में एक अत्यंत क्रोधी व्यक्ति था। उसके क्रोध
की चरमसीमा आ गई, जब उसने अपनी पत्नी को थक्का देकर कुएं में फेंक दिया। किसी क्रोध में पत्नी की हत्या कर दी। उसे खुद भी बहुत पीड़ा और दुख हुआ, पश्चात्ताप हुआ। सभी क्रोधी लोगों को बहुत पश्चात्ताप होता है। इसलिए नहीं कि अब वे क्रोध को नहीं करेंगे, बल्कि इसलिए कि पश्चात्ताप करके वे मन में जो अपराध पैदा होता है क्रोध करने से उसको पोंछ कर साफ कर लेते हैं, ताकि फिर से क्रोध करने के लिए तैयार हो सकें। मन में जो ग्लानि पैदा होती है क्रोध करने की, पश्चात्ताप करके उस ग्लानि को पोंछ लेते हैं, भले आदमी

फिर से हो जाते हैं कि मैंने पश्चात्ताप भी कर लिया, ताकि फिर क्रोध की तैयारी की जा सके।
उस व्यक्ति को पश्चात्ताप हुआ। गांव में एक मुनि का आगमन हुआ था। लोग उसे उस मुनि के पास ले गए। मुनि के चरणों में सिर रख कर उसने कहा कि मुझे कोई रास्ता बताएं, मैं तो पागल हुआ जाता हूं क्रोध के कारण। मुनि ने कहाः रास्ता एक है कि संन्यास ले लो और संसार छोड़ दो। शांति की साधना करो। उस आदमी ने तत्क्षण वस्त्र फेंक दिए, नग्न हो गया और उसने कहा कि मुझे आज्ञा दें, मैं संन्यासी हो गया! मुनि भी हैरान हुए। ऐसा संकल्पवान व्यक्ति पहले उन्होंने कभी नहीं देखा था कि इतनी शीघ्रता से, इतने त्वरित वस्त्र फेंक दे और संन्यासी हो जाए! उन्होंने उसकी पीठ ठोकी, धन्यवाद दिया। और गांव भी जयजयकार से भर गया कि अदभुत व्यक्ति है यह। लेकिन भूल हो गई थी उनसे। वह आदमी था क्रोधी। क्रोधी आदमी कोई भी काम शीघ्रता से कर सकता है। यह कोई संकल्प न था, यह केवल क्रोध का ही एक रूप था। लेकिन वह साधु हो गया, उसकी बहुत प्रशंसा हुई। और चूंकि शांति की तलाश में वह आया था, तो मुनि ने उसे नया नाम दे दिया--शांतिनाथ। वह मुनि शांतिनाथ हो गया।
क्रोधी व्यक्ति था इतना वह। अब तक दूसरों पर क्रोध निकाला था, अब दूसरों पर निकालने का उपाय न रहा, तो उसने अपने पर निकालना शुरू किया। दूसरे साधु तीन दिन के उपवास करते थे, वह तीस दिन के कर सकता था। अपने पर क्रोध निकालने की क्षमता उसकी बहुत बड़ी थी। वह अपने पर हिंसक, वायलेंट हो सकता था। दूसरे साधु छाया में बैठते, तो वह धूप में खड़ा रहता। दूसरे साधु पगडंडी पर चलते, तो वह कांटों में चलता। वह सब तरह से शरीर को कष्ट दिया। बहुत जल्दी उसकी कीर्ति सारे देश में फैल गई। महान तपस्वी की तरह वह प्रसिद्ध हो गया।
वह देश की राजधानी में गया। उसकी कीर्ति उसके चारों तरफ फैल रही थी। वैसा कोई तपस्वी न था। सचाई यह थी कि उस आदमी का क्रोध ही था यह, यह कोई तपश्चर्या न थी। यह क्रोध का ही रूपांतरण था। यह क्रोध की ही अभिव्यक्ति थी। लेकिन दूसरों पर क्रोध निकलना बंद हो गया, अपने पर ही लौट आया। लेकिन इसका किसको पता चलता।
राजधानी में उसका एक मित्र रहता था, बचपन का साथी। उस मित्र को बड़ी हैरानी हुई कि यह आदमी जो इतना क्रोधी था, क्या शांतिनाथ हो गया होगा? जाऊं, देखूं, अगर यह परिवर्तन हुआ तो बहुत अदभुत है।
वह मित्र आया, मुनि तख्त पर बैठे थे, हजारों लोग उन्हें घेरे हुए थे।
जो आदमी प्रतिष्ठा पा जाता है, वह फिर किसी को भी पहचानता नहीं। चाहे
वह मुनि हो जाए, चाहे मिनिस्टर हो जाए। फिर वह किसी को पहचानता नहीं। देख लिया मित्र को, लेकिन कौन पहचाने उस मित्र को, मुनि चुपचाप हैं। मित्र को भी समझ में तो आ गया कि उन्होंने पहचान लिया है लेकिन पहचानना नहीं चाहते हैं। मित्र निकट आया, थोड़ी देर बैठ कर उनकी बातें सुनता रहा, फिर उस मित्र ने पूछाः क्या मैं जान सकता हूं आपका नाम क्या है?
मुनि ने उसे गौर से देखा और कहा, अखबार नहीं पढ़ते हो? सुनते नहीं हो लोगों की चर्चा? मेरा नाम कौन नहीं जानता है? मेरा नाम है, मुनि शांतिनाथ। मित्र तो पहचान गया, क्रोध अपनी जगह है, कहीं कोई फर्क नहीं हुआ। थोड़ी देर मुनि ने फिर बात की, दो मिनट बीत जाने पर उस मित्र ने फिर पूछा, क्या मैं पूछ सकता हूं आपका नाम क्या है? अब तो मुनि को हद हो गया, अभी इसने पूछा दो मिनट पहले। मुनि ने कहाः बहरे हो, पागल हो, कहा नहीं मैंने कि मेरा नाम है, मुनि शांतिनाथ। सुना नहीं? फिर दो मिनट बात चलती होगी, उस आदमी ने फिर पूछा कि क्या मैं पूछ सकता हूं आपका नाम क्या है? उन्होंने डंडा उठा लिया और कहा कि अब मैं बताऊंगा तुम्हें कि मेरा नाम क्या है। उस मित्र ने कहा, मैं पहचान गया, पुराने मित्र हैं आप मेरे, और कुछ भी नहीं बदला है, आप वही के वही हैं।
क्रोध भीतर हो, तो ऊपर से संन्यास ओढ़ लेने से समाप्त नहीं हो जाता। अगर घृणा भीतर हो, तो ऊपर से प्रेम के शब्द सीख लेने से घृणा समाप्त नहीं हो जाती। दुष्टता भीतर हो, तो करुणा के वचन सीख लेने से दुष्टता का अंत नहीं हो जाता। वासना भीतर हो, तो ब्रह्मचर्य के व्रत लेने से समाप्त नहीं

हो जाती। इन बातों से भीतर जो छिपा है उसके अंत का कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन धोखा पैदा हो जाता है, प्रवंचना पैदा हो जाती है, ऊपर से हम वस्त्र ओढ़ लेते हैं अच्छे-अच्छे और नग्नता भीतर छिप जाती है, दुनिया के लिए हम भले मालूम होने लगते हैं, लेकिन भीतर? भीतर हम वही के वही हैं।
ऐसे कोई व्यक्ति धार्मिक नहीं होता, और न मुक्त होता है। बल्कि और गहरे बंधनों में पड़ जाता है। फिर जो भीतर छिपा है वह नये-नये रास्ते खोजता है प्रकट होने के लिए। जैसे केतली में चाय बनती हो, हम ढक्कन को बंद करके ढांक दें जोर से, तो भाप थोड़ी देर में केतली को फोड़ कर बाहर निकल आएगी। भाप बन रही है तो रास्ता खोजेगी। मनुष्य के चित्त में जो भी बन रहा है वह रास्ता खोजेगा। तो फिर पीछे के रास्ते खोजेगा जब सामने के रास्ते हम बंद कर देंगे। तो वह कहीं पीछे के रास्तों से घूम-घूम कर आना शुरू हो जाएगा। और यह पीछे के रास्तों से चित्त का बार-बार आना, इतने बंधन, इतनी कांप्लेक्सिटी, इतनी उलझन खड़ी कर देगा जिसका कोई हिसाब नहीं। आदमी पागल भी हो सकता है उस उलझन में। और पागल न हुआ तो बात ठंडी हो जाए। कहेगा कुछ, करेगा कुछ; होगा कुछ, बताएगा कुछ।
लंदन में एक फोटोग्राफर था। उसने अपने दरवाजे पर, अपने स्टूडियो पर
एक तख्ती टांग रखी थी। उस तख्ती पर उसने अपने स्टूडियो में फोटो उतरवाने की दरें, कीमतें लिख रही थीं, रेट्स लिख रखे थे। बड़े अजीब रेट्स थे उसके। एक भारतीय आदिवासी राजा लंदन गया था, वह भी फोटो उतरवाने गया। उस स्टूडियो में पहुंचा। दरवाजे पर ही तख्ती लगी थी, उस पर लिखा हुआ थाः अगर आप वैसा फोटो उतरवाना चाहते हैं जैसे कि आप हैं, तो दाम पांच रुपया। अगर वैसा फोटो उतरवाना चाहते हैं जैसे कि आप लोगों को दिखाई पड़ते हैं, तो दाम दस रुपया। और अगर वैसा फोटो उतरवाना चाहते हैं जैसा कि आप सोचते हैं आपको होना चाहिए, तो दाम पंद्रह रुपया। वह राजा बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, फोटो भी तीन तरह के होते हैं यह मेरी कल्पना में नहीं था। उसने उस फोटोग्राफर को पूछा कि बड़ी आश्चर्य की बात है, क्या तीन तरह के फोटो होते हैं? फोटो तो मैं सोचता था एक ही तरह के होते हैं, जैसा मैं हूं। क्या नंबर दो और नंबर तीन के फोटो उतरवाने वाले लोग भी यहां आते हैं? उस फोटोग्राफर ने कहा, महाशय! आप पहले ही आदमी हैं जो नंबर एक का फोटो उतरवाने के खयाल में हैं। अब तक तो दूसरे और तीसरे ही लोग आते रहे। कोई वैसा चित्र नहीं उतरवाना चाहता जैसा कि वह है।
दूसरा ही चित्र हम सब बनाए हुए हैं। दूसरा ही व्यक्तित्व, झूठा व्यक्तित्व बनाए हुए हैं। आदर्श झूठा व्यक्तित्व पैदा करते हैं। हिंसा भीतर छिपी रहती है, ऊपर से अहिंसा ओढ़ ली जाती है। भीतर हिंसा उबलती रहती है, ऊपर अहिंसा का भेस। भीतर उबलता रहता है सेक्स, भीतर उबलती रहती है वासना, ऊपर ब्रह्मचर्य के व्रत।
एक साध्वी के पास एक सुबह समुद्र के किनारे में बैठा था। समुद्र की हवाएं आईं और मेरे चादर को उड़ा कर उन्होंने साध्वी को स्पर्श कर दिया। अब समुद्र की हवाओं को क्या पता कि साध्वी पुरुष के वस्त्र नहीं छूती हैं। मैं भी क्या करता हवाएं वस्त्र उड़ा ही ले गई थीं। साध्वी लेकिन घबड़ा आईं। मैंने उससे पूछा, आप बहुत घबड़ा गई हैं, बात क्या है? उसने कहा, पुरुष का वस्त्र छूना वर्जित है, पुरुष का वस्त्र में नहीं छू सकती हूं। यह मेरे ब्रह्मचर्य के व्रत के विरोध में है।
तो मैंने कहाः मैं तो बहुत हैरान हो गया। अभी हम आत्मा की बातें करते
थे, और आप कहती थीं शरीर नहीं है, आत्मा अलग चीज है, मैं शरीर नहीं हूं। यह आप कह रही थीं अभी, और पुरुष का वस्त्र आपको छू गया, वस्त्र भी पुरुष और स्त्री हो सकते हैं? वस्त्र भी पुरुष और स्त्री हो सकते हैं? वस्त्र के साथ भी सेक्स का संबंध जोड़ती हैं आप? यह चादर मैंने ओढ़ ली तो पुरुष हो गई? और अगर चादर छूती है तो आपको छू सकती है? क्योंकि आप तो कहती हैं मैं आत्मा हूं, शरीर नहीं हूं। झूठ कहती होंगी। पढ़ी हुई बात कहती होंगी कि मैं आत्मा हूं। जानती तो बहुत गहरे में यही है कि मैं शरीर हूं। चद्दर भी छूता है तो प्राण कंप जाते हैं। यह कैसा ब्रह्मचर्य? भीतर सेक्स उबल रहा होगा, इसलिए

चद्दर के छूने से इतनी तीव्र लहर दौड़ गई है, अन्यथा इतनी तीव्र लहर नहीं दौड़ सकती।
बुद्ध एक वन में निवास करते थे, गांव के कुछ लोग किसी वेश्या को लेकर जंगल में आ गए। उन सबने शराब पी ली थी। शराब पीया देख कर वेश्या उनको छोड़ कर भाग गई। वे उसके खोजने के लिए जंगल में ढूंढ़ते हुए घूमते थे, एक वृक्ष के नीचे बुद्ध को बैठे देखा, तो उन्होंने कहा कि सुनिए, स्वामी, क्या आप बता सकेंगे यहां से कोई स्त्री भागती हुई निकली है?
बुद्ध ने कहाः मेरे मित्रो, कोई भागता हुआ जरूर निकला, लेकिन स्त्री
थी कि पुरुष, यह बताना कठिन है। क्योंकि जब से मेरी वासना चली गई स्त्री और पुरुष में बहुत फर्क नहीं दिखाई पड़ता है। कोई निकला जरूर, यह कहना मुश्किल स्त्री थी की पुरुष। जब से मेरी वासना चली गई तब से भेद करने का बहुत कारण नहीं रहा। जब तक बहुत गौर से ही न देखूं, तब तक खयाल भी नहीं आता। और गौर से देखने की कोई वजह नहीं रह गई है।
यह आदमी तो हुआ होगा ब्रह्मचर्य को उपलब्ध। लेकिन चद्दर को छूने से किसी के प्राण कंप जाते हों, तो यहां भीतर वासना उबल रही है, कोई ब्रह्मचर्य नहीं है। और ब्रह्मचर्य की कसमें खाई ही किसलिए जाती हैं? इसीलिए न कि भीतर वासना उबल रही है। कसमें खाने से कुछ अंत पड़ सकता है? नहीं, आदर्शों से व्यक्तित्व नहीं बदलता, सिर्फ छिपता है। वंचना, धोखा, सेल्फ-डिसेप्शन पैदा होता है।
फिर कैसे बदलता है व्यक्तित्व?
ये तीन हैं बंधनः सीखा हुआ ज्ञान, किसी का अनुसरण, आदर्शों को थोपने
की चेष्टा। ठीक इन तीन के व्यक्तित्व, इन तीन के घेरों के बाहर, इन तीन भूलों के बाहर व्यक्ति की स्वतंत्रता, मोक्ष और धर्म और आत्मा का प्रारंभ है।
सीखा हुआ ज्ञान भूल जाना पड़ता है। मन को कर लेना होता है सीखे हुए ज्ञान से मुक्त, ताकि भीतर जो छिपा है वह प्रकट होने के लिए द्वार पा सके।
अनुसरण छोड़ देना होता है। क्योंकि अनुसरण ले जाता है स्वयं के बाहर।
किसी के पीछे चलना बंद कर देना होता है, और चलना होता है स्वयं के पीछे।
और तीसरी बात, आदर्श थोपने बंद कर देने होते हैं। फिर चित्त जैसा है उसे जानने के प्रति सजगता, निरीक्षण, ऑब्जर्वेशन विकसित करना होता है। अगर कोई व्यक्ति अपने क्रोध की वृत्ति के प्रति पूरी तरह सजग हो जाए, उस पूरी वृत्ति का निरीक्षण करने में समर्थ हो जाए, तो हैरान हो जाएगा, जैसे ही वह क्रोध को जानने में समर्थ हो जाएगा, वैसे ही पाएगा क्रोध विसर्जित हो गया है। क्रोध को जान कर भी कोई कभी क्रोध नहीं कर सका है। जैसे दीवाल को जान कर कोई दीवाल से निकलने की कोशिश नहीं करता है। हां, आंख बंद हों तो कभी दीवाल से टकरा कर निकलने की कोशिश करता है। लेकिन जिसे दरवाजा दिखाई पड़ता हो, वह दरवाजे से निकलता है दीवाल से नहीं।
हमने निरीक्षण नहीं किया है चित्त का, हमने चित्त को जाना नहीं है, इसलिए क्रोध से टकरा जाते हैं, सेक्स से टकरा जाते हैं, लोभ से टकरा जाते हैं। दीवालों से सिर टकरा जाता और टूट जाता है, लहूलुहान हो जाता है। रोते हैं, चिल्लाते हैं, कसमें खाते हैं, उससे कुछ भी नहीं होता, ठीक से चित्त के भीतर प्रवेश करके जानना होगा, क्या है यह चित्त? क्या हैं इसकी वृत्तियां? कहां से पैदा होती हैं? कैसे विकसित होती हैं? कैसे स्वयं को घेर लेती हैं? कैसे स्वयं को चालित कर देती हैं? अगर कोई वृत्तियों के सम्यक निरीक्षण को, राइट ऑब्जर्वेशन को उपलब्ध हो जाता है, तो वह पाता है कि वृत्ति तो विलीन हो गई और उनकी जगह एक अपूर्व शांति, एक अपूर्व सौम्य का एक... उपस्थित हो गई है।
एक छोटी सी कहानी जिससे मैं समझा सकूं कि निरीक्षण का क्या मतलब है।
बहुत पुरानी कथा है, तीन ऋषि थे, उनकी बहुत ख्याति थी। लोक-लोकांतर में उनका यश पहुंच गया था। इंद्र पीड़ित हो गया था उनके यश को देख कर। और इंद्र ने उर्वशी को, अपने उस गंधर्व नगर की श्रेष्ठतम अप्सरा को कहा, इन तीन ऋषियों को मैं निमंत्रित कर रहा हूं अपने जन्म-दिन पर, तू ऐसी कोशिश करना कि उन तीनों का चित्त विचलित हो जाए।

उन तीन ऋषियों को आमंत्रित किया गया। वे तीन ऋषि इंद्र के नगर में उपस्थित हुए। सारे देवता, सारा नगर देखने आया जन्म-दिन के उत्सव को। उर्वशी ऐसी सजी थी कि खुद इंद्र और देवता हैरान हो गए, जो उससे परिचित थे, भलीभांति जानते थे। वह आज इतनी सुंदर मालूम हो रही थी जिसका कोई हिसाब नहीं। फिर नृत्य शुरू हुआ। उर्वशी ने आधी रात बीतते तक अपने नृत्य से सभी को मोहित, मंत्रमुग्ध कर लिया। फिर जब रात गहरी होने लगी और लोगों पर नृत्य का नशा छाने लगा, तब उसने अपने अलंकार फेंकने शुरू कर दिए। फिर धीरे- धीरे वस्त्र भी। एक ऋषि घबड़ाया और चिल्लाया, उर्वशी बंद करो, यह तो सीमा के बाहर जाना है, यह नहीं देखा जा सकता। दूसरे दो ऋषियों ने कहाः मित्र, नृत्य तो चलेगा, अगर तुम्हें ने देखना हो तो अपनी आंखें बंद कर ले सकते हो। नृत्य क्यों बंद होता है। इतने लोग देखने को उत्सुक हैं, तुम्हारे अकेले के भयभीत होने से नृत्य बंद होने को नहीं। अपनी आंख बंद कर लो तुम्हें नहीं देखना। ऋषि ने आंखें बंद कर लीं। सोचा था उस ऋषि ने कि आंखें बंद कर लेने से उर्वशी दिखाई पड़नी बंद हो जाएगी। पाया कि यह गलती थी, भूल थी।
आंख बंद करने से कुछ दिखाई पड़ना बंद होता है? आंख बंद करने से तो जिससे डरते हम आंख बंद करते हैं वह और प्रगाढ़ होकर भीतर उपस्थित हो जाता है। रोज हम जानते हैं, सपनों में हम उनसे मिल लेते हैं, जिनको देख कर हमने आंख बंद कर ली थी। रोज हम जानते हैं जिस चीज से हम भयभीत होकर भागे थे वह सपनों में उपस्थित हो जाती है। दिन भर उपवास किया था तो रात सपने में किसी राज-भोज पर आमंत्रित हो जाते हैं। यह हम सब जानते हैं। उस ऋषि की भी वही तकलीफ। आंख बंद किए और मुश्किल में पड़ गया है। नृत्य चलता रहा, फिर उर्वशी ने और भी वस्त्र फेंक दिए, केवल एक ही अधोवस्त्र उसके शरीर पर रह गया। दूसरा ऋषि घबड़ाया और चिल्लाया कि बंद करो उर्वशी, यह तो अब अश्लीलता की हद हो गई, बंद करो, यह नृत्य नहीं देखा जा सकता। यह क्या पागलपन है? तीसरे ऋषि ने कहा, मित्र, तुम भी पहले जैसे ही... हो। आंख बंद कर लो, नृत्य तो चलेगा। इतने लोग देखने को उत्सुक हैं। फिर मैं भी देखना चाहता हूं। तुम आंख बंद कर लो। नृत्य बंद नहीं होगा। दूसरे ऋषि ने भी आंख बंद कर ली।
आंख जब तक खुली थी तब तक उर्वशी एक वस्त्र पहने हुई थी। आंख बंद करते
ही ऋषि ने पाया वह वस्त्र भी गिर गया। स्वाभाविक है, चित्त जिस चीज से भयभीत होता है उसी में ग्रसित हो जाता है। चित्त जिस चीज को निषेध करता है, उसी में आकर्षित हो जाता है। फिर उर्वशी का नृत्य और आगे चला, उसने सारे वस्त्र फेंक दिए, वह नग्न हो गई। फिर उसके पास फेंकने को कुछ भी न बचा। वह तीसरा ऋषि बोलाः उर्वशी, और भी कुछ फेंकने को हो तो फेंक दो, मैं आज पूरा ही देखने को तैयार हूं। अब तो अपनी इस चमड़ी को भी फेंक दे, ताकि मैं और भी देख लूं कि और आगे क्या है। उर्वशी ने कहाः मैं हार गई आपसे, वह पैरों पर गिर पड़ी उस शिष्य के, उसने कहा, अब मेरे पास फेंकने को कुछ भी नहीं है। मैं हार गई, क्योंकि आप अंत तक देखने को तैयार हो गए। दो ऋषि हार गए, क्योंकि बीच में ही उन्होंने आंख बंद कर ली। मैं हार गई, अब मेरे पास फेंकने को कुछ भी नहीं, और जिसने मुझे नग्न जान लिया, अब उसके चित्त में जानने को भी कुछ शेष न रहा। उसका चित्त मुक्त ही हो गया।
चित्त का निरीक्षण करना है पूरा। मन के भीतर जो भी उर्वशियां हैं, मन
के भीतर जो भी वृत्ति की अप्सराएं हैं--चाहे काम की, चाहे क्रोध की, चाहे लोभ की, चाहे मोह की, उन सबको पूरी नग्नता में देख लेना है। उनका एक-एक वस्त्र उतार कर देख लेना है। आंख बंद करके भागना नहीं है। एस्केप नहीं है, पलायन नहीं है जीवन की साधना, जीवन की साधना है पूरी खुली आंखों से चित्त का दर्शन। और जिस दिन कोई व्यक्ति अपने चित्त के सब वस्त्रों को उतार कर चित्त की पूरी नग्नता में, पूरी नेकेडनेस में, पूरी अग्लीनेस में, चित्त की पूरी कुरूपता में पूरी आंख खोल कर देखने को राजी हो जाता है, उसी दिन चित्त की उर्वशी पैरों पर गिर पड़ती है और कह देती है मुझे क्षमा करें, मैं हार गई हूं। अब आगे जानने को कुछ भी नहीं है।
चित्त की पूरी जानकारी, चित्त का पूरा ज्ञान चित्त से मुक्ति बन जाता है।

ज्ञान से, सीखे हुए ज्ञान से छुटकारा; अनुकरण से छुटकारा और पलायन, एस्केप से छुटकारा। ये तीन छुटकारे धर्म के सूत्र हैं। और हम तीनों के उलटा कर रहे हैं, इसलिए हम बंधन में हैं। इन तीन को जो साधता है वह साधक है। इन तीन को जो साधता है वह परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट हो जाता है। उस मंदिर में नहीं जो आपके गांव में बना है। आदमियों का बनाया हुआ कोई मंदिर परमात्मा का मंदिर नहीं है। उस मंदिर में जो आपके भीतर है, जो चेतना का मंदिर है, जो चिन्मय मिट्टी का नहीं, पत्थरों का नहीं, चेतना की ईंटों से बना हुआ आपके भीतर मंदिर है। जो इन तीन सूत्रों को साध लेता है, वह उस मंदिर की सीढ़ियां पार कर जाता और प्रविष्ट हो जाता है।
उस मंदिर में पहुंच कर ज्ञात होता है--न तो कोई दुख है, न कोई चिंता, न कोई पीड़ा। उस मंदिर में पहुंच कर ज्ञात होता है--कोई मृत्यु भी नहीं है। उस मंदिर में पहुंच कर ज्ञात होता है कि जीवन एक अमृत, एक अमृत, एक आनंद, एक आलोक है। उस मंदिर में पहुंच कर ही अनुभव होता है उस सत्य का जिसको हम प्रभु कहें। और उस मंदिर पर हम कोई भी नहीं पहुंच सकेंगे, क्योंकि मंदिर के बाहर हमने अपने पिंजड़े बना रखे हैं और उनके सींकचों को हम पकड़ कर जोर से चिल्ला रहे हैं--स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता। और कोई चाहे भी कि आपको निकाल ले बाहर और मुक्त कर दे, सुबह होने के पहले आप वापस अपने पिंजड़े में बैठ जाएंगे। कोई दूसरा आपको निकाल भी नहीं सकता है। जब तक कि आपको ही यह दिखाई न पड़ने लगे कि मैं स्वतंत्रता चाहते हुए भी जो कर रहा हूं वह परतंत्रता निर्मित हो रही है उससे। जिस दिन आपको यह दिखाई पड़ जाएगा, यह कंट्राडिक्शन, जीवन का यह विरोधाभास कि मांगता हूं आजादी, निर्मित करता हूं गुलामी; जाना चाहता हूं पूरब, चलता हूं पश्चिम; खोजता हूं प्रकाश, आंखें बंद किए अंधेरे को बना लेता हूं स्वयं। जिस दिन यह विरोधाभास जीवन का दिखाई पड़ जाएगा, उसी दिन आपके जीवन में एक क्रांति हो सकती है।
ऐसी क्रांति का नाम ही धर्म है। हिंदू और मुसलमान और जैन होने का नाम धर्म नहीं। परतंत्रता से, परतंत्रता को देखने की क्षमता से स्वतंत्रता की तरफ जो अभीप्सा पैदा होती है, उसी अभीप्सा का, उसी प्यास का नाम धर्म है। परमात्मा करे आप कभी धार्मिक हो सकें, क्योंकि जो धार्मिक होता है उसी का जीवन धन्य और उदार होता है।
मेरी इन थोड़ी सी बातों को आपने सुना, अगर इनसे कुछ प्रश्न पैदा हो गए हों, तो मैं समझूंगा बात काम कर गई। कोई प्रश्न आपके मन में आ गए हों, तो संध्या उन पर हम बात करेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। और अंत में सबके भीतर बने हुए मंदिर में छिपा जो प्रभु है, उसके लिए प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

आनंद की खोज
चौथा प्रवचन

आदर्शों को मत थोपें

मेरे प्रिय आत्मन्!
तीन मुक्ति-सूत्रों के संबंध में सुबह मैंने आपसे बात की। सत्य को जानने की दिशा में, या आनंद की उपलब्धि में, या स्वतंत्रता की खोज में मनुष्य का चित्त सीखे हुए ज्ञान से, अनुकरण से और वृत्तियों के प्रति मूर्च्छा से मुक्त होना चाहिए, यह मैंने कहा।
इस संबंध में बहुत से प्रश्न आए हैं। उन पर हम विचार करेंगे।
बहुत से मित्रों ने पूछा है कि यदि शास्त्रों पर श्रद्धा न हो, महापुरुषों पर विश्वास न हो, तब तो हम भटक जाएंगे, फिर तो कैसे ज्ञान उपलब्ध होगा?

ऐसा प्रश्न स्वाभाविक है। मन को यह खयाल आता है कि यदि महापुरुषों पर, शास्त्रों पर श्रद्धा न करेंगे तो भटक जाएंगे। मगर बड़े आश्चर्य की बात है, हम यह नहीं सोचते कि श्रद्धा करते हुए भी हम भटकने से कहां बच सके हैं। विश्वास करते हुए भी क्या हम भटक नहीं रहे हैं? भटक नहीं गए हैं? विश्वास हमें कहां ले जा सका है। विश्वास कहीं ले जा भी नहीं सकता। क्यों? क्योंकि जो विश्वास दिखाई पड़ता है ऊपर से, भीतर उसके संदेह छिपा होता है। विश्वास संदेह को छिपाने के वस्त्रों से ज्यादा नहीं है। जब आप कहते हैं, मैं विश्वास करता हूं। उसका ही मतलब हुआ कि आपके भीतर संदेह मौजूद है, नहीं तो विश्वास कैसे करिएगा। जब कोई आदमी कहता है, मैं ईश्वर पर विश्वास करता हूं, उसका मतलब? उसका मतलब अगर वह थोड़ा भीतर झांक कर देखेगा तो पाएगा कि संदेह मौजूद है। उसी संदेह को छिपाने के लिए विश्वास किया गया है। जो आदमी जानता है वह विश्वास नहीं करता।
श्री अरविंद को किसी ने पूछा थाः डू यू बिलीव इन गॉड? क्या आप विश्वास करते हैं ईश्वर में? तो श्री अरविंद ने कहाः नहीं; आई डू नॉट बिलीव, आई नो। मैं विश्वास नहीं करता हूं, मैं जानता हूं।
ज्ञान के अतिरिक्त संदेह कभी समाप्त नहीं होता। ज्ञान ही संदेह की मृत्यु बन सकता है। जैसे प्रकाश अंधकार की मृत्यु बनता है, वैसे ही ज्ञान संदेह की मृत्यु बनता है। विश्वास देकर हम अपने आपको धोखा दे लेते हैं। हम सोचते हैं कि हमने विश्वास कर लिया, बात समाप्त हो गई। विश्वास से बात समाप्त नहीं होती, भीतर संदेह मौजूद बना ही रहता है। भीतर संदेह होता है, ऊपर विश्वास होता है। जीवन भर संदेह नष्ट नहीं होता इस भांति। जिन्हें संदेह नष्ट करना हो, और संदेह नष्ट हो जाए तो ही जीवन में एक थिरता, तो ही जीवन में एक वास्तविक स्थिति उत्पन्न होती है। तो ही हम सत्य के साक्षात में समर्थ होते हैं। लेकिन संदेह जिसको मिटाना है उसे संदेह करना पड़ता है सम्यक रूप से। उसे राइट डाउट, उसे ठीक-ठीक संदेह की विधि सीखनी होती है। और अगर कोई मनुष्य ठीक से संदेह करना शुरू करे, तो एक दिन उस जगह पहुंच जाता है जहां संदेह नहीं किया जा सकता है। उस दिन जो उपलब्ध होता है वही ज्ञान जीवन को बदलता है।
क्या आप सोचते हैं ऐसा कोई सत्य नहीं होगा जीवन में जिस पर संदेह न किया जा सके? ऐसा सत्य है। लेकिन हम तो संदेह ही नहीं करते, इसलिए उसको खोज कैसे पाएंगे? सोने को आग में डालते हैं, स्वर्ण बच जाता है और जो व्यर्थ है वह जल जाता है। संदेह की आग में जो सत्य नहीं है वह जल जाएगा और जो सत्य है वह बच जाएगा। लेकिन संदेह की आग में जिसने सत्य के स्वर्ण को डाला ही नहीं, वह कभी जान भी नहीं पाएगा उसके पास स्वर्ण है या मिट्टी। संदेह की आग में डालना जरूरी है सारे विश्वासों को, ताकि जो कचरा है वह जल जाए। और जो न जल सके, अछूता निकल आए अग्नि के बाहर, वह आपके जीवन को बदल देगा, वह होगा सत्य। सत्य को संदेह से डरने की जरूरत नहीं है। जो डर रहा है, उसके पास सत्य नहीं होगा, उसके पास होगा, थोथा विश्वास। इसलिए भय मालूम पड़ता है कि मैं कहीं भटक न जाऊं। कहीं मैं जिस विश्वास को पकड़े हूं, वह जल कर राख न हो जाए। जो

जल सकता है, वह जल ही जाना चाहिए, उस सोने के भ्रम में रहने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन ऐसा सत्य है जीवन में, जो कोई भी संदेह जिसे नहीं जला पाते हैं? जो संदेह की अग्नि से सुरक्षित बाहर निकल आता है?
एक व्यक्ति था, दैप्यान। उसने संदेह करना शुरू किया--ईश्वर पर, जगत पर, शास्त्रों पर, सब पर। उसने तय किया कि मैं उस समय तक संदेह किए चला जाऊंगा जब तक मुझे कोई ऐसी चीज उपलब्ध न हो जाए जिस पर मैं संदेह करना भी चाहूं तो न कर सकूं। जहां जाकर मेरी संदेह की नौका जिस चट्टान से जाकर टकरा कर चूर-चूर हो जाएगी, उसी चट्टान को मैं नमस्कार करूंगा और कहूंगा यह सत्य है। संदेह किया उसने तो ईश्वर भी चला गया संदेह में। शास्त्र भी चले गए। महापुरुष भी चले गए। गुरु भी चले गए। सिद्धांत, संप्रदाय, धर्म भी चला गया। सब चला गया। लेकिन एक जगह आकर वह चट्टान उपलब्ध हो गई जिस पर संदेह नहीं किया जा सकता था। वह चट्टान थी, स्वयं की चट्टान। अंत में उसने चाहा कि मैं अपने पर भी संदेह करूं कि मैं हूं या नहीं? लेकिन उसे पता चला, अगर मैं यह भी कहूं कि मैं नहीं हूं, तो भी यह मेरे होने का ही प्रमाण बनता है। अगर मैं संदेह करूं अपने पर, तो मेरा संदेह भी मेरे होने को सिद्ध करता है। इस जगह आकर संदेह टूट गया। स्वयं पर संदेह नहीं किया जा सकता।
एक फकीर था, नसरुद्दीन। एक सांझ मित्रों के साथ बातचीत में संलग्न रहा और नसरुद्दीन की बातें इतनी मीठी और इतनी प्रीतिपूर्ण थीं कि रात के कब बारह बज गए मित्रों को भी पता न चला। रात के भोजन का समय चूक गया। फिर नसरुद्दीन बोला, अब मैं जाता हूं। तो उसके मित्रों ने कहा, तुमने हमारे रात्रि का भोजन भी चूका दिया है। और अब तो घर लोग सो चुके होंगे, हमें भूखे ही सोना पड़ेगा आज। नसरुद्दीन ने कहा, घबड़ाओ मत, मेरे साथ चलो, आज मेरे घर ही भोजन कर लेना।
बीस मित्रों को लेकर आधी रात नसरुद्दीन घर पहुंचा। जोश में निमंत्रण
तो दे दिया। जैसे-जैसे घर के पास पहुंचा और पत्नी की याद आई, वैसे-वैसे डरा। रात आधी हो गई थी, बिना खबर दिए बीस लोगों को भोजन के लिए लाना। पत्नी क्या कहेगी? और फिर आज दिन भर से वह घर लौटा भी नहीं था। और वह तो फकीर था। सुबह आटा मांग लाता था, उसी से सांझ भोजन बनता था। आज आटा भी नहीं ला पाया था। मुश्किल होगी, द्वार पर जाकर उसे लगा, कठिनाई होगी खड़ी। उसने मित्रों से कहा, तुम रुको, जरा मैं भीतर जाऊं, अपनी पत्नी को समझा लूं। मित्र भी समझ गए, पत्नियों को बिना समझाए बड़ी कठिनाई है ऐसी स्थिति में।
मित्र बाहर रुक गए। नसरुद्दीन भीतर गया। पत्नी तो आगबबूला होकर बैठी थी। दिन भर से उसका कोई पता न था। घर में चूल्हा भी नहीं जला था। मांग कर आटा ही नहीं लाया गया था। और जब उसने जाकर कहा कि बीस मित्रों को भोजन के लिए निमंत्रण देकर ले आया हूं।
तो उसकी पत्नी ने कहा, तुम पागल हो गए हो, कहां थे दिन भर? भोजन का सवाल कहां है, हमारे लिए भी आटा नहीं भोजन का, मित्रों का तो कोई सवाल उठता नहीं। जाओ, उन्हें वापस लौटा दो।
नसरुद्दीन ने कहाः मैं कैसे वापस लौटाऊं? एक काम कर, तू जाकर उनसे कह
दे कि नसरुद्दीन घर पर नहीं है।
उसकी पत्नी ने कहाः यह और अजीब बात आप मुझे समझा रहे हैं। आप उन्हें लेकर आए हैं और मैं उनसे जाकर कहूं कि नसरुद्दीन घर पर नहीं है! नसरुद्दीन ने कहाः अब इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं। जाकर कह, समझाने
की कोशिश कर।
वह स्त्री बाहर गई, उसने मित्रों से पूछाः आप कैसे आए हैं?
उन मित्रों ने कहाः आए नहीं, लाए गए हैं, निमंत्रित हैं। आपके पति भोजन का निमंत्रण देकर ले आए हैं।
उसने कहाः मेरे पति? वे तो दिन भर से आज घर में नहीं हैं, उनका कोई पता नहीं हैं।
मित्र हंसने लगे, उन्होंने कहाः खूब मजाक हो गई यह तो। वे ही हमें लिवा कर लाए हैं, ऐसा कैसा हो सकता है कि वे घर पर न हों। वे भीतर मौजूद हैं। मित्र विवाद करने लगे। और आखिर में उनकी पत्नी से बोले कि आप हट जाओ, हम भीतर जाकर देख लेते हैं अगर नहीं है तो।

नसरुद्दीन को भी क्रोध आ गया। वह बाहर निकल कर आ गया और उसने कहा, क्यों विवाद किए चले जा रहे हो। यह भी तो हो सकता कि नसरुद्दीन आपके साथ आए हों फिर पीछे के दरवाजे से निकल गए हों।
नसरुद्दीन खुद ही आकर यह कहने लगे कि यह भी तो हो सकता कि नसरुद्दीन आपके साथ आए हों फिर पीछे के दरवाजे से निकल गए हों।
मित्रों ने कहाः पागल हो गए हो! क्रोध में तुम्हें समझ नहीं आ रहा। तुम खुद ही यह कह रहे हो कि मैं नहीं हूं। यह कैसे हो सकता है। यह तो तुम्हारे होने का प्रमाण हो गया।
एक जगह है केवल जहां संदेह खंडित हो जाते हैं, गिर जाते हैं, वह है स्वयं का अस्तित्व, वह है स्वयं की आत्मा। लेकिन हम संदेह करते ही नहीं, तो इस बिंदु तक हम कभी पहुंच ही नहीं पाते। संदेह की यात्रा किए बिना कोई सत्य की मंजिल पर न कभी पहुंचा है न पहुंच सकता है। हम तो विश्वास कर लेते हैं। इसलिए निःसंदिग्ध सत्य का कभी कोई अनुभव नहीं हो पाता। और जब हमें कोई ऐसा सत्य ही न मिलता हो, जो निःसंदिग्ध है, जो इनडूबिटेबल, जिस पर शक नहीं किया जा सकता, तो हम सत्य की खोज भी कैसे करें। जब कोई स्वयं की चेतना के पास आकर यह अनुभव करता है कि नहीं, इस पर संदेह असंभव है, तब, तब इसकी खोज में और गहरे उतर सकता है।
इसलिए मैंने कहा, घबड़ाएं न विश्वास को छोड़ने से। विश्वास को पकड़ने के कारण ही आप सत्य को नहीं पकड़ पा रहे हैं। जिन हाथों में विश्वास की राख है उन हाथों में कभी सत्य का अंगार नहीं हो सकता है। सत्य को जो छोड़ता है, सत्य को जो छोड़े हुए है, वही सब्स्टीट्यूट की तरह, पूरक की तरह विश्वास को पकड़े हुए है। और जब तक इस विश्वास के पूरक को पकड़े रहेगा, तब तक सत्य की आकांक्षा और प्यास भी पैदा नहीं होती।
इसलिए जीवन की खोज में विश्वासों की राख को झड़ा देना स्वयं से, अदभुत, अदभुत अर्थ, बहुत महत्वपूर्ण अर्थ रखता है। लेकिन हमें यह समझाया जाता रहा है कि विश्वास के कारण ही हम जीवन में कहीं पहुंच सकते हैं।
झूठी है यह बात, सत-प्रतिशत झूठी है। आज तक जो भी व्यक्ति कहीं पहुंचे हैं, उनमें से कोई भी विश्वास के कारण नहीं पहुंचा है। जो भी पहुंचे हैं वे खोज के कारण पहुंचे हैं। और खोज कौन करता है? खोज वही करता है जो संदेह करता है। जो संदेह ही नहीं करता, वह खोज कैसे करेगा? न तो आस्तिक खोज करते हैं और न नास्तिक। आस्तिक मान लेते हैं बिना जाने कि ईश्वर है, नास्तिक मान लेते हैं बिना जाने कि ईश्वर नहीं है। ये दोनों विश्वास हैं। ये दोनों ही रुक जाते हैं।
धार्मिक आदमी तीसरे तरह का आदमी है। धार्मिक आदमी न तो आस्तिक होता, न नास्तिक होता। धार्मिक आदमी तो यह कहता है कि मुझे पता नहीं है मैं कैसे मान लूं? मैं अज्ञान में हूं, मैं नहीं जानता हूं। मैं खोजूंगा और अगर किसी दिन कोई सत्य मिला, तो फिर तो मान ही लूंगा। मिलने पर मानने का कोई सवाल ही नहीं रह जाता। लेकिन जब तक नहीं मिला है तब तक मैं कैसे मान लूं? अगर मैं मानता हूं तो क्या यह मान्यता असत्य की स्वीकृति नहीं है? और ऐसे असत्य पर खड़ा हुआ जीवन धार्मिक हो सकता है?
दुनिया में सभी लोग तो धार्मिक मालूम पड़ते हैं। निश्चित ही उनके जीवन
का आधार कहीं कुछ असत्य होगा। अन्यथा दुनिया कभी की स्वर्ग बन गई होती। कोई मंदिर में मानता, कोई मस्जिद में, कोई बाइबिल में, कोई कुरान में, कोई गीता में, कोई महावीर में, कोई बुद्ध में, सभी तो मानते हैं। इतनी मान्यता के बावजूद भी पृथ्वी नरक बनी हुई है। इतनी मान्यता और विश्वासों के बाद भी जीवन में कौनसे आनंद की ध्वनि उत्पन्न हो हुई! कौनसे सुगंध के फूल लग गए! हजारों साल से विश्वास में दीक्षित मनुष्य को खूब भटकाया गया। इसलिए मत कहें यह कि विश्वास न होता तो हम भटक जाएंगे। विश्वास के कारण ही आप भटक गए हैं। विश्वास न होगा तो पहुंच सकते हैं, भटकाव समाप्त हो सकता है। क्योंकि जिसके चित्त पर विश्वास नहीं होता... विश्वास के न होने का मतलब नास्तिक हो जाना नहीं है, नास्तिक का भी अपना विश्वास होता है--ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, बिना जाने इन बातों को वह पकड़े हुए रहता है। आस्तिक का भी विश्वास होता है, नास्तिक का भी। धार्मिक व्यक्ति का, खोज करने वाले व्यक्ति का,

जिसके जीवन में इंक्वायरी है सत्य की उसका कोई विश्वास नहीं होता, उसके अनुभव होते हैं। और जब अनुभव आ जाता है तो ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान विश्वास नहीं है। ज्ञान तो प्रत्यक्ष साक्षात है।
विवेकानंद खोज में थे सत्य की। रवींद्रनाथ के पिता थे, महर्षि देवेंद्रनाथ। विवेकानंद देवेंद्रनाथ के पास एक रात गए। देवेंद्रनाथ जब चांदनी रातें होती थीं तो एक नाव पर एक बजरे में ही नदी में निवास करते थे। विवेकानंद सर रात्रि को तैर कर आधी रात में बजरे पर पहुंचे, जाकर दरवाजा धकाया, अटका था द्वार खुल गया। देवेंद्रनाथ आंख बंद किए ध्यान करने को बैठे थे। विवेकानंद ने जाकर हिला दिया और कहा कि मैं एक प्रश्न पूछने आया हूं। ईश्वर को जानते हैं आप? अजीब आदमी मालूम पड़ा यह युवक, आधी रात में पानी से लथपथ नदी को पार करके चला आता है। धका कर किसी को जबरदस्ती उठा कर पूछता है, ईश्वर को जानते हैं आप? देवेंद्रनाथ झिझक गए एक क्षण को, और कहाः बैठो, फिर मैं बताऊं। विवेकानंद ने कहाः आपकी झिझक ने सब कुछ कह दिया। वे नदी वापस कूद गए और चले गए।
यही विवेकानंद कुछ दिनों के बाद रामकृष्ण के पास पहुंचे। रामकृष्ण से
भी जाकर यही पूछा, ईश्वर को जानते हैं आप? रामकृष्ण ने नहीं कहा कि ठहरो समझाता हूं। रामकृष्ण ने कहा, तुझे जानना है तो बोल? तू जानना चाहता है तो बोल? मैं जानता हूं या नहीं जानता इसे पूछने से क्या फायदा? तुझे जानना है तो बोल?
विवेकानंद बाद में कहते, देवेंद्रनाथ की श्रद्धा थी कि ईश्वर है, रामकृष्ण का अनुभव था। श्रद्धा झिझक गई, क्योंकि पीछे संदेह था, कहूं, कैसे कहूं कि मैं जानता हूं? मानता हूं, सिद्ध कर सकता हूं, प्रमाण दे सकता हूं, शास्त्र के उल्लेख दे सकता हूं, उपनिषद, गीता से समर्थन दे सकता हूं, लेकिन जानता हूं? हजार प्रमाण भी, हजार अनुमान भी, हजार तर्क भी एक छोटे से अनुभव को भी पूरा कर सकते हैं? हजार शास्त्र भी एक छोटे से अनुभव के बराबर तोले जा सकते हैं? एक कण भर अनुभव हजारों शास्त्र से ज्यादा मूल्यवान है। धर्म है अनुभव, विश्वास नहीं। और पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकी, क्योंकि हमने भूल से धर्म का संबंध विश्वास से जोड़ दिया है। और जब तक यह संबंध जुड़ा हुआ है पृथ्वी धार्मिक नहीं हो सकेगी।
आप देखते हैं, रोज धर्म हारता जा रहा है, रोज। रोज विज्ञान बढ़ता जा रहा
है धर्म हारता जा रहा है। क्या आपको पता है कि विज्ञान की ताकत क्या है? विज्ञान की ताकत है संदेह। और धर्म की कमजोरी क्या है? धर्म की कमजोरी है विश्वास। विज्ञान कर रहा है संदेह। संदेह के माध्यम से कर रहा है खोज। खोज से उपलब्ध हो रहा है किन्हीं निःसंदिग्ध तत्वों को। और धर्म? धर्म कर रहा है आंख बंद करके विश्वास। विश्वास से खोज हो जाती बंद, उपलब्धि नहीं होती कुछ भी, सिर्फ बैठे रह जाते हैं लोग। धर्म हार रहा है विज्ञान के समक्ष। इसे ऐसा भी कह सकते हैं विश्वास हार रहा है संदेह के समक्ष। और जब तक धर्म भी संदेह कि शक्ति को नहीं उपलब्ध होगा, तब तक विज्ञान के समक्ष धर्म के जीतने की कोई संभावना नहीं है। अगर चाहते हैं कि कभी धर्म जीत जाए इस बड़े संघर्ष में, अगर चाहते हैं कि कभी धर्म लोगों के जीवन में प्रतिष्ठित हो जाए, तो समझ लें ठीक से इस बात को कि संदेह के बिना, खोज के बिना, अनुभव के बिना धर्म कभी भी प्रतिष्ठित नहीं हो सकेगा। लेकिन हम धर्म को प्रतिष्ठित करने के खयाल से विश्वास की शिक्षाओं को और जोर से चिल्लाने लगते हैं कि विश्वास करो, विश्वास करो। और हमें पता नहीं कि यही शिक्षा धर्म को डूबा रही है। जिसको आप समझ रहे हैं धर्म का आधार, वही धर्म की बीमारी है, आधार नहीं।
सोचें, आने वाली पीढ़ियों को और बच्चों को आप विश्वास नहीं करवा पा रहे हैं। इसलिए आप बच्चों को गाली दे रहे हैं कि अविश्वासी पैदा हो गए हैं, और ये धर्म को डूबा देंगे। गलती है आपकी। आपकी पीढ़ियों ने पहली दफे ठीक से संदेह पैदा करना शुरू किया है। गलती नई पीढ़ी की नहीं है जो संदेह कर रही है, गलती आपकी है कि आप उनके संदेह को धार्मिक नहीं बना पा रहे हैं। आप तो संदेह के दुश्मन हैं। तो आप संदेह को धार्मिक बना ही नहीं सकेंगे कभी। और अगर आप संदेह को धार्मिक नहीं बना सकते, तो इसको भविष्यवाणी समझ ले सकते

हैं कि धर्म के सूरज का अस्त हो चुका है, अब यह धर्म जिंदा नहीं रह सकेगा। अगर आने वाली पीढ़ियों की जिंदगी में धर्म को देखना है आपको, तो ठीक से समझ लें, विश्वास के द्वारा उन पीढ़ियों को नहीं समझाया जा सकता। विश्वास से केवल उनको समझाया जा सकता था जो अशिक्षित थे, बुद्धिहीन थे, जिनके जीवन में तर्क और विचार नहीं था। आने वाली पीढ़ियां विचार और तर्क में प्रतिष्ठित हो रही हैं, विज्ञान में दीक्षित हो रही हैं, विज्ञान से परिचित हो रही हैं। वे संदेह के बल को समझ रही हैं। वे विश्वास की कमजोरी के लिए राजी नहीं हो सकतीं। आप जिम्मेवार हैं अगर नये बच्चे अधार्मिक हो जाएंगे, तो यह पाप आप पर होगा, नये बच्चों पर नहीं। यह बहुत सीधी और साफ बात है।
संदेह पर खड़ा होना चाहिए धर्म। तब धर्म स्वस्थ होता है। तब धर्म एक जबरदस्ती नहीं होता। तब हम उसे किसी के ऊपर थोप नहीं देते हैं, बल्कि हम उस व्यक्ति को सहारा देते हैं--उसका संदेह, उसका विचार विकसित हो और एक दिन उस जगह पहुंच जाए जहां सब संदेह निर्सन हो जाते हैं, सब संदेह गिर जाते हैं। फिर जो अनुभव होता है वही धार्मिक है।
इसलिए मैंने सुबह आपसे कहा, विश्वास जहर है। और विश्वास के जहर में ही धर्म बेहोश है। उससे धर्म को मुक्त हो जाना चाहिए और मनुष्य को भी। यह मनुष्य की मुक्ति की दिशा में पहला प्रयत्न, पहला सूत्र, पहली सीढ़ी।

और बहुत से मित्रों ने पूछा हैः आदर्श, जो मैंने दूसरा सूत्र कहा, कि आदर्श हट जाने चाहिए व्यक्तित्व के सामने से।
तो उन्होंने कहा, आदर्श हट जाएंगे तो फिर व्यक्ति बनेगा क्या?

हमें खयाल ही नहीं है, व्यक्ति आदर्श से नहीं बनता, व्यक्ति बनता से बीज से, पोटेंशिएलिटी से। व्यक्ति भविष्य से नहीं बनता, जो उसके भीतर छिपा है उसके प्रगटन से, उसकी अभिव्यक्ति से बनता है।
एक बीज हम बो देते हैं फूल का; वृक्ष बड़ा होता है किसी आदर्श के कारण? वृक्ष मैं फूल आते हैं किसी आदर्श के कारण? नहीं, वृक्ष के बीज में जो छिपा है उसके एक्सप्रेशन, उसकी अभिव्यक्ति के कारण वृक्ष में पत्ते आते हैं, फूल आते हैं, फल आते हैं। जो छिपा है वह पूरी तरह प्रकट हो सके, तो वृक्ष में फूल आ जाते हैं। आदमी के साथ हम उलटा काम कर रहे हैं हजारों साल से। हम आगे उस पर कुछ थोपते हैं कि तुम यह बनो। हम यह फिकर नहीं करते कि तुम्हारे भीतर क्या छिपा है वह तुम प्रकट हो जाओ। जीवन का विकास प्रकटीकरण है, मेनिफेस्टेशन है। जीवन का विकास आरोपण नहीं है, कल्टीवेशन नहीं है। जीवन को ऊपर से नहीं थोपना पड़ता, भीतर से विकसित करना होता है।
हम एक आदमी को कहते हैं, महावीर जैसे बन जाओ। हम महावीर को इस आदमी के ऊपर थोपने की कोशिश करते हैं बिना यह जाने कि इस आदमी का बीज क्या है, इस आदमी की पोटेंशिएलिटी क्या है, इसके भीतर क्या छिपा है। यह गुलाब का फूल बनने को है, चमेली का, जुही का, क्या? इसको बिना जाने हम इसके ऊपर किसी को थोपने की कोशिश करते हैं। स्वभावतः परिणाम यह होता है कि जो इसके भीतर छिपा है वह कुंठित हो जाता है, वह वहीं ठहर जाता है, स्टेग्नेंट हो जाता है, जड़ हो जाता है। फिर इसके प्राण तड़फड़ाते हैं, क्योंकि जो भीतर छिपा है अगर प्रकट न हो सके, तो जीवन दुख, चिंता, एं.जायटी, फ्रस्टेशन से भर जाता है। जीवन की एक ही खुशी है, एक ही आनंद, एक ही मुक्ति कि जो मेरे भीतर छिपा है वह पूरी तरह प्रकट हो जाए, पूरी फ्लावरिंग हो जाए, उसका पूरा फूल विकसित हो जाए। लेकिन हमने अब तक जो किया है वह उलटा है।
भीतर जो छिपा है उसे प्रकट करने की कोशिश नहीं, बाहर जो दिखाई पड़ता है उसे थोपने की चेष्टा, ये दोनों उलटी बातें हैं।
अगर मैं किसी बगिया में चला जाऊं और वहां जाकर गुलाब के फूल को कहूं,
तू कमल का फूल हो जा। चमेली को कहूं, तू चंपा हो जा। पहली तो बात, फूल मेरी बात सुनेंगे नहीं। फूल आदमियों जैसे नासमझ नहीं होते कि हर किसी की बात सुनने को इकट्ठे हो जाएं। सुनेंगे ही नहीं। मैं चिल्लाता रहूंगा, फूल अपनी मौज में, हवाओं में तैरते रहेंगे। फिकर भी नहीं करेंगे कि कोई समझाने

आया हुआ है। लेकिन हो सकता है आदमी के साथ-साथ रहते-रहते कुछ फूल बिगड़ गए हों। सोहबत का बुरा असर पड़ता ही है। हो सकता है कुछ फूल उपदेश सुनने के प्रेमी हो गए हों और मेरी बात सुन लें, तो उस बगिया में बड़ा उत्पात मच जाएगा। फिर उस बगिया में एक बात तय है, फूल पैदा ही नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब कोशिश करेगा कमल होने की। चमेली कोशिश करेगी चंपा होने की। गुलाब के भीतर कमल होने की कोई संभावना ही नहीं है। कमल होने की कोशिश में कमल तो हो ही नहीं सकेगा, यह असंभव है। लेकिन दूसरी दुर्घटना घट जाएगी, कमल होने की कोशिश में वह गुलाब भी नहीं हो पाएगा। क्योंकि सारी कोशिश कमल होने में लग जाएगी, तो गुलाब होने के लिए शक्ति कहां बचेगी, दृष्टि कहां बचेगी, समय कहां बचेगा, सुविधा कहां बचेगी, खयाल भी नहीं बेचेगा कि मुझे गुलाब होना है, मुझे तो कमल होना है। यह रोग उसके ऊपर चढ़ गया तो वह गुलाब नहीं हो सकता। उस बगिया में फूल पैदा होने बंद हो जाएंगे।
आदमी की बगिया में फूल पैदा होना हजारों साल से बंद है। कभी एकाध फूल पैदा हो जाता है। अगर कोई माली साढ़े तीन लाख पौधे लगाए, साढ़े तीन अरब पौधे लगाए और एक पौधे में फूल पैदा हो जाए, उस माली को हम धन्यवाद देंगे? शायद हम यही समझेंगे कि यह फूल माली से बच कर शायद विकसित हो गया। क्योंकि साढ़े तीन अरब पौधों में तो कोई फूल नहीं लगा। एकाध महावीर कभी पैदा हो जाता, एकाध बुद्ध, एकाध क्राइस्ट, इससे कोई आदमी का गौरव है? इससे आदमी का कोई गौरव नहीं। अरबों आदमी बिना फूलों के समाप्त हो जाते हैं। क्या शेष सारे लोग पूजा करने को पैदा हुए हैं कि एक फूल पैदा हो जाए शेष उसकी पूजा करें? मंदिर बनाएं? जयजयकार करें? नहीं साहब, नहीं, हर आदमी अपने भीतर फूलों को विकसित करने को पैदा हुआ है किसी की पूजा करने को नहीं।
लेकिन आदमी को कर दिया हमने हीन-हीन। दूसरे जैसे बनने की कोशिश से आदमी हो गया विकृत। उसकी सारी चेतना हो गई पथभ्रष्ट। हमने उसको समझा दिया दूसरे जैसे बनो। छोटे से बच्चे को ही हम यह बीमारी के रोगाणु भरना शुरू कर देते हैं--गांधी जैसे बनो, फलां जैसे बनो, ढिकां जैसे बनो। गांधी बहुत अच्छे हैं, बहुत प्यारे, लेकिन गांधी जैसे बनने की चेष्टा बहुत गलत, बहुत खतरनाक। महावीर बहुत खूबी के हैं, लेकिन कोई दूसरा आदमी महावीर बनने को नहीं है।
एक-एक आदमी अनूठा और अलग और पृथक है, कोई आदमी किसी दूसरे जैसा नहीं है। तो आदर्श मनुष्य को आत्मच्युत कर देते हैं, उसे भटका देते हैं। आदर्श भटका देते हैं, आदर्श ने भटकाया हुआ है। इसलिए जो आप पैदा हुए हैं जो क्षमता लेकर, वह क्षमता वैसी ही पड़ी रह जाती है, वह कभी विकसित नहीं होती। मेरा कहना है, आदर्श नहीं; आत्मा।
बाहर कोई आदर्श नहीं है किसी के लिए। भीतर छिपा है बीज। और उस बीज की तलाश तभी हो सकती है जब बाहर का आदर्श हम छोड़ें, अन्यथा उस बीज की खोज भी नहीं हो पाती। उस बीज पर ध्यान ही नहीं जा पाता। कभी आपने सोचा कि आप क्या होने को पैदा हुए हैं? कभी आपने सोचा कि कौन सी क्षमता आपके भीतर छिपी है? खोजा आपने उस क्षमता को? क्या है मेरे भीतर? गुलाब का फूल, चमेली का, घास का फूल, क्या है मेरे भीतर?
और स्मरण रहे, एक घास का फूल भी जब पूरी तरह खिलता है तो किसी गुलाब, किसी कमल से पीछे नहीं होता। एक घास का फूल भी जब पूरी शान से खिलता है, और हवाओं में अपनी सुगंध बिखेर देता है, और हवाओं पर तैरता है, तब उसका आनंद किसी कमल और किसी गुलाब से कम नहीं होता।
और परमात्मा की दृष्टि में घास के फूल का कोई विरोध नहीं है। हवाएं फर्क नहीं करतीं कि गुलाब के फूल पर ज्यादा देर ठहर जाएं, घास के फूल पर कम। सूरज की रोशनी फर्क नहीं करती कि कमल के लिए ज्यादा रोशनी दे दे, घास के फूल से कह दे, शूद्र तू ठहर, तू सामान्य आदमी तू कहां बीच में आता है। नहीं, प्रकृति कोई भेद नहीं करती है। सब भेद आदमी के बनाए हुए हैं। हर आदमी जो हो सकता है वही होना चाहिए उसे। किसी दूसरे के अनुसरण की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि महावीर को आप न समझें। महावीर को खूब समझें, बुद्ध को खूब समझें, राम को खूब समझें। और जितना आप समझेंगे उतना ही आप पाएंगे कि अनुकरण करना ठीक

नहीं। क्योंकि समझने से आपको पता चलेगा, यह आदमी किसी का अनुकरण किया ही नहीं, तो मैं इसका अनुकरण कैसे करूं? आज तक दुनिया का कोई महापुरुष किसी का अनुगामी नहीं है। इसको उलटा भी कह सकते हैं, चूंकि वह किसी का अनुगामी नहीं है इसीलिए महापुरुष हो सका है। और आप अनुगामी हैं इसलिए आपके भीतर महानता का जन्म नहीं हो सकता है। आप अनुगामी होने से खुद हीन हो गए अपने हाथों, आपने स्वीकार कर ली अपनी इनफिरिआरिटी। अपनी हीनता आपने मान ली कि मैं तो अनुगामी हूं, अनुयायी हूं। किसी के पीछे जाना मनुष्य की आत्मा का सबसे बड़ा अपमान है।
इसलिए मैंने कहा कि आदर्श नहीं; चाहिए निजता, चाहिए खुद के व्यक्तित्व में छिपे हुए बीजों को विकास करने की क्षमता, उनका अनुसंधान। आदर्श से बंधा हुआ व्यक्ति यह कभी भी नहीं कर पाता। और आदर्श की चेष्टा से उसके जीवन में एक तरह का थोपा हुआ व्यक्तित्व, कल्टीवेटिड व्यक्तित्व पैदा हो जाता है, जो बिल्कुल झूठा होता है। हम सब अपने ऊपर जो-जो चेष्टाएं करते हैं आदर्श बनने की, उन सबसे हम अभिनेता हो जाते हैं और कुछ भी नहीं। राम को हुए कितने दिन हुए, कोई राम पैदा नहीं होता। हां, रामलीला के राम बहुत पैदा हुए। रामलीला के राम बनना शोभापूर्ण है? रामलीला के राम बनना गरिमापूर्ण है? यह भी हो सकता है कि रामलीला का राम इतना कुशल हो जाए बार-बार रामलीला करते हुए कि असली राम से अगर प्रतिस्पर्धा करवाई जाए तो असली राम हार जाएं। यह भी हो सकता है। क्योंकि असली राम से भूलें भी होती हैं, चूक भी होती हैं; नकली राम से कोई भूल-चूक ही नहीं होती, नकली आदमी भूल-चूक करता ही नहीं। क्योंकि उसे तो सब पार्ट याद करके करना होता है। राम को तो बेचारे को पाठ याद करने की सुविधा नहीं थी, सीता खो गई तो उन्हें कोई बताने वाला नहीं था कि अब किस तरह छाती पीटो और क्या कहो। जो हुआ होगा वह सहज हुआ होगा। वह स्पांटेनियस था। कहीं कोई लिखी हुई किताब से याद किया हुआ नहीं था, इसलिए भूल-चूक भी हो सकती है। लेकिन रामलीला का राम बिल्कुल कुशल होता, उससे भूल-चूक होती नहीं। उसका सब तैयार है; सब डायलाग, सब भाषण, सब, सब पहले से निश्चित है। और फिर बार-बार उसको मिलता है, राम को तो एक ही दफे लीला करने का मौका मिलता है, रामलीला के राम को हर साल मौका मिलता है। तो यह निष्णात होता चला जाता है। यह इतना निष्णात हो सकता है कि अगर दोनों आपके सामने लाकर खड़े कर दिए जाएं तो असली राम की कोई फिकर ही न करे नकली राम के लोग पैर छुएं।
ऐसा एक दफे हो भी गया। चार्ली चैपलीन का नाम सुना होगा। वह एक हंसोड़ अभिनेता था। उसकी पचासवीं वर्षगांठ बड़े जोर-शोर से मनाई गई थी। और एक उस वर्षगांठ पर एक विशेष आयोजन किया गया सारे यूरोप और अमेरिका में। अभिनेताओं को निमंत्रित किया गया कि दूसरे अभिनेता चार्ली चैपलीन का अभिनय करें। ऐसे सौ अभिनेता सारी दुनिया से चुने जाएंगे। प्रतियोगिताएं होंगी नगरों-नगरों में। और फिर अंतिम प्रतियोगिता होगी। और उस अंतिम प्रतियोगिता में तीन व्यक्ति चुने जाएंगे जो चार्ली चैपलीन का पार्ट करने में सर्वाधिक कुशल सिद्ध होंगे। उन तीन को तीन पुरस्कार दिए जाएंगे। प्रतियोगिता हुई, हजारों अभिनेताओं ने भाग लिया। एक से एक कुशल अभिनेता ने, चार्ली चैपलीन बना, बनने की कोशिश की। चार्ली चैपलीन के मन में हुआ कि मैं भी किसी दूसरे के नाम से फार्म भर कर सम्मिलित क्यों न हो जाऊं? मुझे तो प्रथम पुरस्कार मिल ही जाने वाला है। खुद ही चार्ली चैपलीन हूं मेरा धोखा और कौन दे सकेगा। और जब बात भी खुलेगी तो एक मजाक हो जाएगी, मैं तो हंसोड़ अभिनेता हूं ही। लोग कहेंगे खूब मजाक की इस आदमी ने।
वह एक छोटे से गांव में जाकर फार्म भर कर सम्मिलित हो गया। अंतिम प्रतियोगिता हुई उसमें वह सम्मिलित था। सौ लोगों में वह भी एक था, किसी को पता नहीं। वहां तो सौ चार्ली चैपलीन एक से मालूम होते थे, एक सी मूंछ, एक सी चाल, एक सी ढाल, वे सब चार्ली चैपलीन थे। प्रतियोगिता हुई, पुरस्कार बंटे, मजाक भी खूब हुई, लेकिन चार्ली चैपलीन ने जो सोची थी वह मजाक नहीं हुई, मजाक उलटी हो गई। चार्ली चैपलीन को द्वितीय पुरस्कार मिल गया। कोई अभिनेता उसके ही पार्ट करने में नंबर एक आ गया। और जब पता चला दुनिया को,

तो दुनिया हैरान रह गई कि हद्द हो गई यह बात तो! कि चार्ली चैपलीन खुद मौजूद था प्रतियोगिता में और नंबर दो का पुरस्कार मिला!
तो हो सकता है महावीर के अनुयायी महावीर को हरा दें नकल करने में। बिल्कुल हरा सकते हैं। चूंकि अनुयायी एक नकल होता है, असल नहीं। लेकिन नकली आदमी हरा भी दे तो भी नकली आदमी नकली आदमी है, उसके भीतर कोई आनंद, कोई प्रफुल्लता, कोई विकास, कोई पूर्णता उपलब्ध नहीं हो सकती। और इन नकली आदमियों का एक ज्वार चलता है सारी दुनिया में।
अभी गांधी हमारे मुल्क में थे, गांधी के साथ हजारों नकली गांधी इस मुल्क में पैदा हो गए थे। उन्होंने मुल्क को डूबा दिया, उन नकली गांधीयों ने मुल्क को डूबा दिया। गांधी जैसी खादी पहनने लगे, गांधी जैसा चरखा चलाने लगे। उन्होंने डूबा दिया इस मुल्क को। जो नकली गांधी पैदा हो गए थे इस मुल्क हत्यारे साबित हुए हैं, मर्डरर्स साबित हुए। डूबा दिया इस मुल्क को। डुबाए जा रहे हैं रोज। डुबाएंगे ही, क्योंकि नकली आदमी भीतर कुछ और होता है, बाहर कुछ और। असली आदमी जो भीतर होता है वही बाहर होता है।
असली आदमी बनना है तो किसी आदर्श को थोपने की कोशिश भूल कर भी मत करना। अन्यथा आप एक नकली आदमी बन जाएंगे। और आपका जीवन तो गलत हो ही जाएगा, आपके जीवन की गलती दूसरों तक को नुकसान पहुंचाएगी। समाज तब एक धोखा, एक प्रवंचना हो जाता। पूरा समाज एक फ्राड हो जाता है। क्योंकि जब सभी नकली आदमी होते हैं तो फिर बड़ी मुश्किल हो जाती है।
इसलिए मैंने कहा, आदर्श नहीं। लेकिन आपको डर लगता है यह--यह पूछा है प्रश्नों में--यह डर लगता है कि अगर आदर्श छोड़ दिया तो फिर हम बनें क्या? यह आदर्श वालों ने यह सिखा दिया है आपको कि बनने के लिए कोई पैटर्न, कोई ढांचा, कोई तस्वीर, कोई लक्ष्य होना चाहिए। नहीं, बनने के लिए लक्ष्य नहीं होता, न ढांचा होता है, न पैटर्न होता है। बनने के लिए तो जो भीतर छिपा है उसे जगाने की चेष्टा होती है। आगे ढांचा नहीं होता, भीतर जो छिपा है...
एक आदमी को कुआं खोदना है, क्या करता है वह? मिट्टी खोदता है, पत्थर निकालता है। पानी तो भीतर छिपा है। बाधाएं अलग कर देता है। सारी मिट्टी- पत्थर को निकाल कर बाहर फेंक देता है, भीतर से पानी के झरने फूट आते हैं। आपको क्या बनना है यह खयाल ही गलत है। आपके भीतर क्या छिपा है उसकी जितनी बाधाएं हैं उनको आप अलग कर दें, वह प्रकट हो जाए। आदमी की जीवन की साधना किसी लक्ष्य को उपलब्ध करने की साधना नहीं, किन्हीं बाधाओं को दूर करने की साधना है। आदमी के जीवन की साधना हिंडरेंसेस को, जो बीच में रुकावटें हैं उनको दूर करने की साधना है, किसी लक्ष्य को पाने की साधना नहीं। लक्ष्य को पाने की बात ही गलत है। आपके भीतर मौजूद है लक्ष्य, अगर आप सब तरह से खुद के निखार लें, साफ कर लें, तो आप पाएंगे कि आपके भीतर से रोशनी आनी शुरू हो गई, आपके भीतर व्यक्तित्व का जन्म होना शुरू हो गया। तो कौनसी बाधाएं हैं जिनको हम अलग कर दें? तो ये बाधाएं हैं जो मैं गिना रहा हूं। विश्वास बाधा है। आदर्श बाधा है। अनुकरण बाधा है। ये बाधाएं हटा दें। इनके हटते ही आपके भीतर जीवन के झरने फूटने शुरू हो जाएंगे। लेकिन हम अपने जीवन के कुआं बनाते ही नहीं, हम तो हौज बना लेते हैं। दीवाल उठा कर एक हौज बना लेते हैं, उधार दूसरों के कुएं से पानी लाकर भर लेते हैं और निश्चिंत हो जाते हैं। हौज भी कोई कुआं है? ऊपर से धोखा पैदा हो जाता है। इसमें भी पानी भरा हुआ है और कुएं में भी पानी भरा हुआ है। हौज का पानी उधार है। हौज के पानी में कोई झरें नहीं हैं, कोई झरने नहीं हैं, हौज का पानी किसी समुद्र से जुड़ा हुआ नहीं है। कुआं? कुएं के पास अपने जल-स्रोत हैं, खुद का पानी है, उधार नहीं है। कुएं की अपनी आत्मा है। हौज की अपनी कोई आत्मा नहीं है, सब उधार है हौज। कुएं के पास अपना व्यक्तित्व है, अपनी आत्मा है, अपनी निजता है, अपनी इंडीविजुअलिटी है और उसके झरने सागर से जुड़े हैं, दूर सागरों से, कुएं के पानी को उलीचते चले जाएं तो कुआं चिल्लाएगा नहीं कि बस बंद करो मैं खाली हो जाऊंगा, कुएं का पानी जितना उलीचिए कुआं और नये ताजे पानी से भर जाता है, और जवान, युवा हो जाता है। इसलिए कुआं लुटाता है। हौज? हौज संग्रह करती है। क्योंकि हौज अगर लुटाएगी तो खाली हो जाएगी, रिक्त हो जाएगी।

बस हौज और कुएं के तरह के, दो तरह के आदमी होते हैं दुनिया में। जिनको
आप कहते हैं, त्याग किया, उसका और कोई मतलब नहीं है, आप कहते हैं महावीर ने इतना त्याग किया, उसका मतलब महावीर एक कुआं हैं, जितना लुटाते हैं उतनी नई ताजगी भीतर भरती चली आती है। त्याग का और क्या मतलब होता है? त्याग का मतलब होता है, जितना यह आदमी छोड़ता है उतना ही भीतर उपलब्ध होता है। इसलिए तो छोड़ता है। छोड़ने से पाता है भीतर। और दूसरे तरह के वे आदमी जो हर चीज को संग्रह करते हैं, कुछ भी छोड़ते नहीं--मकान, धन, ज्ञान, सब संग्रह करते चले जाते हैं। लाओ, लाओ, लाओ, उनकी एक भाषा होती है, आओ, सब आ जाए, सब इकट्ठा हो जाए। क्यों? क्योंकि उनके पास अपना तो कुछ भी नहीं है, जितना इकट्ठा हो जाएगा उतने ही मालूम पड़ेंगे कि वे कुछ हैं। हौज बन गए हैं वे, कुआं नहीं बन पाए। हौज का पानी सड़ जाता है। संग्रह करने वाला व्यक्तित्व भी सड़ जाता है। हौज के पानी में थोड़े दिन में कीड़े दिखाई पड़ने लगेंगे, बदबू निकलने लगेगी। संग्रह करने वाले व्यक्ति में भी थोड़े दिन में दुर्गंध, थोड़े दिन में कुरूपता पैदा हो जाती है। लेकिन जो कुआं बनता है, जो उलीचता है स्वयं को, बांटता है स्वयं को, संग्रह नहीं करता लुटा देता है स्वयं को, उसको व्यक्तित्व में निरंतर-निरंतर सौंदर्य के नये-नये तल प्रकट होने लगते हैं। उसके व्यक्तित्व से नई-नई सुगंध रोज जन्म पाने लगती है। उसके भीतर से रोशनी के और नये-नये स्रोत उपलब्ध होने लगते हैं। क्योंकि उतनी ही फेंकने में बाधाएं दूर हो जाती हैं। और उतना ही जो भीतर छिपा है वह प्रकट होने लगता है।
जीवन की साधना स्वयं के ऊपर आए हुए आवरण, बाधाएं, पर्दे, धूल, इस सबको हटा देने की साधना है, स्वयं को पाने की साधना, लक्ष्य पाने की साधना नहीं है। जीवन खुद है अपना लक्ष्य। कहीं कोई इतर, अलग, कोई लक्ष्य नहीं है जीवन के सामने जिसको आपको पाना है।
अकबर के दरबार में तानसेन बहुत दिन रहा था। एक दिन अकबर ने तानसेन को रात में विदा करते वक्त कहा, तेरे गीत सुन कर, तेरे संगीत में डूब कर अनेक बार मुझे ऐसा लगता है, तू बेजोड़ है, शायद ही पृथ्वी पर कभी किसी ने ऐसा बजाया हो जैसा तू बजाता है। लेकिन आज तुझे सुनते वक्त मुझे एक खयाल आ गया, तूने भी शायद किसी से सीखा होगा? तेरा भी कोई गुरु होगा? हो सकता है तेरा गुरु तुझसे भी अदभुत बजाता हो? तेरा गुरु जीवित हो, तो मैं उसे सुनना चाहता हूं।
तानसेन ने कहाः गुरु मेरे जीवित हैं, लेकिन उन्हें सुनना तो, वे तो जब बजाते हैं तभी आपको पहुंच कर सुनना पड़ेगा। इसलिए बड़ा मुश्किल है मामला। अकबर ने कहाः कितना ही मुश्किल हो, तुमने जो कहा उससे मेरी आकांक्षा
और भी बढ़ गई। मैं उन्हें सुनना ही चाहूंगा। कोई व्यवस्था करो।
तानसेन ने पता लगाया तो पता चला--उसके गुरु थे, हरिदास, वे एक फकीर थे
और यमुना के किनारे रहते थे--उसने पता चलाया, चौबीस घंटे आदमी वहां लगा कर रखे कि वे कब बजाते हैं, किन घड़ियों में, तो पता चला, रात चार बजे वे रोज सितार बजाते हैं।
अकबर और तानसेन चोरी से जाकर अंधेरी रात में झोपड़े के बाहर छिप गए। दुनिया के किसी सम्राट ने शायद किसी कलाकार को इतना आदर न दिया होगा कि चोरी से उसे सुनने गए। रात अंधेरे में झोपड़े के बाहर छुप रहे। चार बजे वीणा बजनी शुरू हुई। अकबर के आंसू, थामता है नहीं थमते, जब तक वीणा बजती रही वह रोता ही रहा। जैसे किसी और ही लोक में पहुंच गया। वापस लौटने लगा तो जैसे किसी तंद्रा में, जैसे किसी स्वप्न में। महल तक तानसेन से कुछ बोला नहीं। महल में विदा करते वक्त तानसेन से कहा, तानसेन, मैं सोचता था तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं। लेकिन देखता हूं, तुम्हारे गुरु के सामने तो तुम कुछ भी नहीं हो। इतना फर्क कैसे? तुम ऐसी दिव्य दशा में, तुम ऐसे दिव्य संगीत को उपलब्ध नहीं हो पाते, क्या है कारण? कौनसी बाधा बन रही है? तानसेन सिर झुका कर खड़ा हो गया और कहा, बाधा को मैं भलीभांति जानता हूं। सबसे बड़ी बाधा यही है कि मैं किसी लक्ष्य को लेकर बजाता हूं। बजाता हूं, ध्यान लगा रहता है क्या मिलेगा बजाने के बाद पुरस्कार? क्या होगा? पुरस्कार मेरा लक्ष्य है, उसको ध्यान में रख कर बजाता हूं। इसलिए कितनी ही

मेहनत करता हूं मुक्त नहीं हो पाता मेरा बजाना, पुरस्कार से बंधा रहता है। मेरे गुरु किसी आकांक्षा से नहीं बजाते। बजाने के आगे कुछ भी नहीं, जो कुछ है बजाने के पीछे है। मैं बजाता हूं ताकि मुझे कुछ मिल सके। वे बजाते हैं क्योंकि उन्हें कुछ मिल गया है। कोई आनंद उपलब्ध हुआ है, वह आनंद के कारण बजता है। वह आनंद बजने में फैलता है और प्रकट होता है। वह आनंद अभिव्यक्त होता है बजने में। बजने के आगे कोई भी लक्ष्य नहीं है। बजने के पीछे जरूर प्राण हैं, लेकिन आगे कोई लक्ष्य नहीं है। मेरे बजने के पीछे कोई प्राण नहीं हैं, बजने के आगे लक्ष्य है।
ऐसे ही दो तरह के जीवन होते हैं। जो आदर्श को आगे बांध कर जीवित होने
की कोशिश करता है उसका जीवन वैसे ही है जैसे कोई गाय के सामने घास रख ले और चलने लगे, तो गाय उस घास की लालच में पीछे-पीछे चलती चली जाती है। चलती तो जरूर है, लेकिन यह चलता बिल्कुल बंधन का चलना है। घास की आकांक्षा में बंधी-बंधी चलती है। इससे मुक्ति कभी नहीं आती। हम भी लक्ष्य बना कर जीवन को चलते हैं इसलिए बंध जाते हैं कभी मुक्त नहीं होते। अगर मुक्त होना है तो जीवन में आगे लक्ष्य रखने की जरूरत नहीं, पीछे जो छिपा है उसे प्रकट करने की जरूरत है। तब उसकी अभिव्यक्ति से जीवन निकलता है। तब उस आनंद से जो संगीत पैदा होता है वह संगीत ही मुक्ति और मोक्ष बन जाती है।
इसलिए मैंने कहा, अनुकरण नहीं, आदर्श नहीं।

अंतिम एक प्रश्न पूछा है, उसकी चर्चा करके मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
एक प्रश्न पूछा है कि हम शांत कैसे हो जाएं? आप कहते हैं, शांति द्वार है; आप कहते हैं, शून्य द्वार है, तो हम शांत कैसे हो जाएं? शून्य कैसे हो जाएं? निर्विकल्प दशा को कैसे उपलब्ध हो जाएं? समाधि कैसे मिले? ऐसे दो- चार प्रश्न पूछे हैं।

बहुत सरल है निर्विकल्प दशा को उपलब्ध करना। अत्यंत सरल, उससे सरल कोई बात ही नहीं है। लेकिन ये जो तीन बातें मैंने पहली कहीं, ये बड़ी कठिन हैं। और इन तीन को जो नहीं कर पाता वह उस अत्यंत सरल बात को भी नहीं कर पाता। वह चौथी सीढ़ी है। इन तीन को पार करके ही उसे पार किया जा सकता है। वह तो बहुत सरल है। कठिनाई है इन तीन बातों की--विश्वास को, अनुकरण को, आदर्श को त्यागने में बड़ी कठिन, बड़ा आर्डुअस, बड़ा श्रम है। लेकिन चौथी बात बहुत सरल है। जो इन तीन बातों को कर ले, चौथी बात करनी ही नहीं पड़ती, बड़ी सरलता से हो जाती है। उस सूत्र के संबंध में अंत में थोड़ी सी बात आपको समझाऊं। लेकिन इन तीन को किए बिना वह नहीं हो सकेगा।
जैसे कोई हमसे पूछे कि हम फूल कैसे पैदा करें? मैं कहूंगा, फूल पैदा करना बड़ी सरल बात है। फूल पैदा करने में कुछ करना ही नहीं पड़ता। लेकिन बीज लगाने में बड़ी मदद करनी पड़ती है। पानी सींचने में, खाद डालने में बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। पौधे की सम्हाल करने में, बागुड़ लगाने में बहुत श्रम उठाना पड़ता है। फिर जब सब सम्हल जाती है बात, बीज अंकुर बन जाता, खाद मिल जाती, पानी मिल जाता, चारों तरफ सुरक्षा हो जाती है पौधे की, तो फूल तो अपने आप आ जाते हैं, फूल का आना कोई कठिन है? कुछ भी करना पड़ता है फूल को लाने में? फूल तो अपने आप आटोमेटिक, पौधा सम्हल जाए, फूल आ जाते हैं। लेकिन आप कहें कि पौधे की तो बाकी बातचीत छोड़िए, हमको तो सिर्फ फूल लाना है, तब मामला बहुत कठिन हो जाता है। आप कहें कि यह तो सब ठीक है, विश्वास हमें करने दो, आदर्श हमें मानने दो, अनुकरण हमें करने दो, जैन, हिंदू, मुसलमान हमें बना रहने दो, बाकी चित्त शांत करने का, शून्य करने का कोई रास्ता हो तो बता दें। तो आप ऐसी बात कर रहे हैं कि पौधा तो हम लगाएंगे नहीं, बीज हम डालेंगे नहीं, पानी हम सींचेंगे नहीं, यह तो छोड़ो, ये बातें छोड़ दो, हमें दो इतना बता दो कि फूल कैसे आते हैं? फिर फूल नहीं आते।
चित्त की निर्विकल्प दशा, शून्य दशा, ध्यान दशा बहुत सरल है। लेकिन सीढ़ियां जो उस तक पहुंचाती हैं वे बड़ी कठिन मालूम होती हैं। और वे भी कठिन इसलिए नहीं हैं कि वे कठिन हैं, आप में साहस नहीं है जरा सा भी, इसलिए वे कठिन हो गई हैं। साहस हो, एक क्षण की देर नहीं है।

मैं एक नगर में था। उस नगर के कलेक्टर ने मुझे फोन किया और कहा कि मैं अपनी मां को भी चाहता हूं कि आपके सुनने के लिए लाऊं, लेकिन मेरी मां की उम्र नब्बे के करीब पहुंच गई, और आपकी बातों से मैं परिचित हूं, तो मैं डरता हूं कि इस बुढ़िया को लाना कि नहीं लाना? क्योंकि वह तो चौबीस घंटे माला जपती रहती है, राम-राम जपती रहती है। सोती है तो भी हाथ में माला लिए ही सोती है। तीस वर्ष से यह क्रम चलता है, तो मैं डरता हूं इस बुढ़ापे में आपकी बातें सुन कर कहीं उसको आघात और चोट न लग जाए, कहीं वह विचलित न हो जाए व्यर्थ ही और अशांत न हो जाए, तो मैं लाऊं या न लाऊं? उसकी उम्र नब्बे वर्ष।
मैंने उनसे कहाः अगर उम्र कुछ कम होती तो मैं कहता, दुबारा आऊंगा तब
ले आना। उम्र नब्बे वर्ष है इसलिए ले ही आना, क्योंकि दुबारा मिलना हो सके इसका कोई पक्का भरोसा नहीं।
वे अपनी मां को लेकर आए। मैंने देखा उनकी मां माला लिए ही आई हुई थी। हाथ में माला वह चलती ही रहती है। बात सुनने के बाद वे चले गए, दूसरे दिन आए और मुझसे कहने लगे, मैं बहुत हैरान हो गया हूं। आपने तो ऐसी बातें कहीं कि मुझे लगा कि जैसे मेरी मां को जान कर ही आप कह रहे हैं। मुझे लगा मुझसे गलती हो गई जो मैं आपको बता कर अपनी मां को लाया। आप तो जैसे मेरी मां को ही सारी बातें कह रहे हों, ऐसा मुझे लगने लगा। और मैं बहुत डरा हुआ रहा। लौटते में कार में मैंने अपनी मां को पूछा कि तुम्हें चोट तो नहीं लगी, कुछ बुरा तो नहीं लगा? मेरी मां कहने लगी, बुरा? चोट? उन्होंने कहा, माला से कुछ भी नहीं होगा, मुझे बात बिल्कुल ठीक लगी, तीस साल का मेरा अनुभव भी कहता है कि कुछ भी नहीं हुआ, मैं माला वहीं छोड़ आई।
इतना साहस। तो मैंने उनसे कहा, तुम्हारी मां तुमसे ज्यादा जवान है।
साहस व्यक्ति को युवा बनाता है। छोड़ने का हममें जरा भी साहस नहीं है।
इसलिए हम अटके खड़े रह जाते हैं। और व्यर्थ बातें भी छोड़ने का साहस नहीं है, तब तो बहुत कठिनाई हो जाती है।
शून्यता पा लेनी बहुत सरल है, साहस चाहिए।
क्या करें शून्यता पाने को?
इन तीन सीढ़ियों के पहले कुछ भी नहीं किया जा सकता, एक बात। इन तीन सीढ़ियों के बाद बहुत कुछ किया जा सकता है। और बहुत सरल सी बात है, अगर चित्त के प्रति चित्त में चलती हुई जो विचार की धारा है, दिन-रात चल रही है, विचार और विचार और विचार, चित्त में विचारों कीशृंखला चल रही है। जैसे रास्ते पर लोग चलते हैं, ऐसा ही चित्त में विचार चलते हैं। यह विचारों की भीड़ चल रही है चित्त में। इसके प्रति अगर कोई चुपचाप जागरूक हो जाए, साक्षी बन जाए, बस और कुछ भी न करे। लड़ने की जरूरत नहीं है, राम-राम जपने की जरूरत नहीं है। क्योंकि राम-राम जपना खुद ही अशांति का एक रूप है। एक आदमी राम-राम, राम-राम कर रहा है, यह आदमी बहुत अशांत है, और कुछ भी नहीं। क्योंकि शांत आदमी इस तरह की बकवास करता है, एक ही शब्द को लेकर दोहराता है बार-बार? यह आदमी अशांत ही नहीं है, पागल होने के करीब है। चूंकि हम निरंतर इस बात को मान बैठे हैं कि राम-राम जपना बड़ा अच्छा है। हम फिकर नहीं कर रहे। यही आदमी अगर एक कोने में बैठ कर कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी कहने लगे, तो हम चिंतित हो जाएंगे। यही आदमी अगर कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी कहने लगे, तो हम चिंतित हो जाएंगे। भागेंगे, कहेंगे कि चिकित्सा करवानी है, हमारे घर में एक व्यक्ति कुर्सी, कुर्सी, कुर्सी घंटे भर तक बैठ कर कहता रहता है। लेकिन राम-राम कहने में कोई फर्क है? एक ही बात कोई शब्द को लेकर दोहराना विक्षिप्त होने की शुरुआत है, स्वस्थ होने की नहीं। चित्त रुग्ण हो रहा है। न तो राम-राम की जरूरत है, जिसको आप जप कहते हैं, न मंत्रों की जरूरत है। चित्त को शांत करना है। और आप व्यर्थ की बातें दोहरा कर उसको अशांत कर रहे हैं शांत नहीं।
कुछ मत दोहराइए, कोई भगवान का नाम नहीं है। कोई शब्द-मंत्र नहीं है। कुछ दोहराने की जरूरत नहीं है। फिर चुपचाप बैठ कर मन में जो अपने आप चल रहा है कृपा करके उसको ही देखिए, अपनी तरफ से और मत चलाइए। वैसे ही काफी चल रहा है अब आप और काहे को चलाने की कोशिश कर रहे हैं। जो मन में चल रहा है अपने

आप, आप उसके किनारे बैठ कर चुपचाप देखते रहिए, बस साक्षी हो जाइए, जस्ट ए विटनेस, सिर्फ एक देखने वाले। बुरा चले तो भी निकालने की कोशिश मत करिए, क्योंकि निकालने की कोशिश में आप सक्रिय हो गए, फिर साक्षी न रहे। हटाने की कोशिश मत करिए किसी विचार को। किसी विचार को लाने की कोशिश भी मत करिए। क्योंकि दोनों हालत में आप कूद पड़े धारा में, बाहर खड़े न रहे। मन की धारा के किनारे तटस्थ तट पर बैठ जाइए और देखते रहिए, मन को चलने दीजिए, चुपचाप देखते रहिए। और कुछ भी मत करिए, सिर्फ देखना, सिर्फ दर्शन पर्याप्त है। आप थोड़े ही दिनों में पाएंगे कि देखते ही देखते मन की धारा क्षीण होने लगी, मन की नदी का पानी सूखने लगा। जैसा आपकी गांव की नदी का सूखा रह जाता है, वैसे ही मन का पानी धीरे-धीरे सूखने लगेगा। आप देखते रहिए, धीरे-धीरे अनुभव होने लगेगा आपको कि देखते ही देखते बिना कुछ किए मन की धारा क्षीण होने लगी है, और एक दिन आप चकित हो जाएंगे कि आप बैठे हैं और मन की धारा में कहीं कोई विचार नहीं है। जिस दिन भी यह अनुभव आपको हो जाएगा, उसी दिन आपको पता चल जाएगा कि दर्शन विचार की धारा को तोड़ने की विधि है। अ-दर्शन मूर्च्छित भाव से विचार में पड़े रहना विचार को बढ़ाने की विधि है। हम मूर्च्छित भाव से विचार में पड़े रहते हैं, विचार को देखते नहीं। बस इसके अतिरिक्त और कोई बंधन नहीं है विचार के।
जिस दिन भी आप द्रष्टा होने में समर्थ हो जाते हैं उसी दिन विचार विलीन हो जाते हैं। और तब जो शेष रह जाता है वह है शांति, वह है निर्विकल्प दशा, वह है समाधि, वह है ध्यान, और भी कोई नाम, जिसको जो मर्जी हो दे सकता है। वह है चित्त की निर्विकार स्थिति। उस दशा में ही जाना जाता है जीवन, उस दशा में ही पहचाना जाता है सत्य, उस दशा में ही मिलन हो जाता है उससे जिसे भक्त भगवान कहते हैं, ज्ञानी आत्मा कहते हैं, विचारशील लोग सत्य कहते हैं। सत्य की उपलब्धि ही मुक्ति है। उसको जानते ही व्यक्ति के जीवन में फिर कोई बंधन, कोई दुख, कोई मृत्यु नहीं रह जाती।
इस दिशा में थोड़ा प्रयोग करें और देखें। क्योंकि इस दिशा में तो प्रयोग करके देखा ही जा सकता है। यह दिशा तो सिर्फ अनुभव की दिशा है।
इसमें कोई और आपके साथ कोई सहयोग नहीं कर सकता। कोई आपको पकड़ कर समाधि में नहीं ले जा सकता। आपको ही श्रम करना होगा।
और मैं कहता हूं, अत्यंत सरल है समाधि को उपलब्ध करना, अगर पहले की सीढ़ियां चढ़ने का साहस आपमें हो।

मेरी इन बातों को इतनी शांति, इतने प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत आनंदित और अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे, छिपे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।